Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्री कांची कामकोटि पीठाधिपती
जगद्‌गुरू शंकराचार्य
श्री जयेंद्र सरस्वती स्वामिजी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्री कांची कामाक्षी देवी

श्रीकाञ्च्यां कामकोट्यां कल्पितस्थापनीं कल्पयित्वा सुरेशे ।
श्रीविद्याराजपीठार्चनमहित महाराज्यमाज्ञाप्यनस्मीर् ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

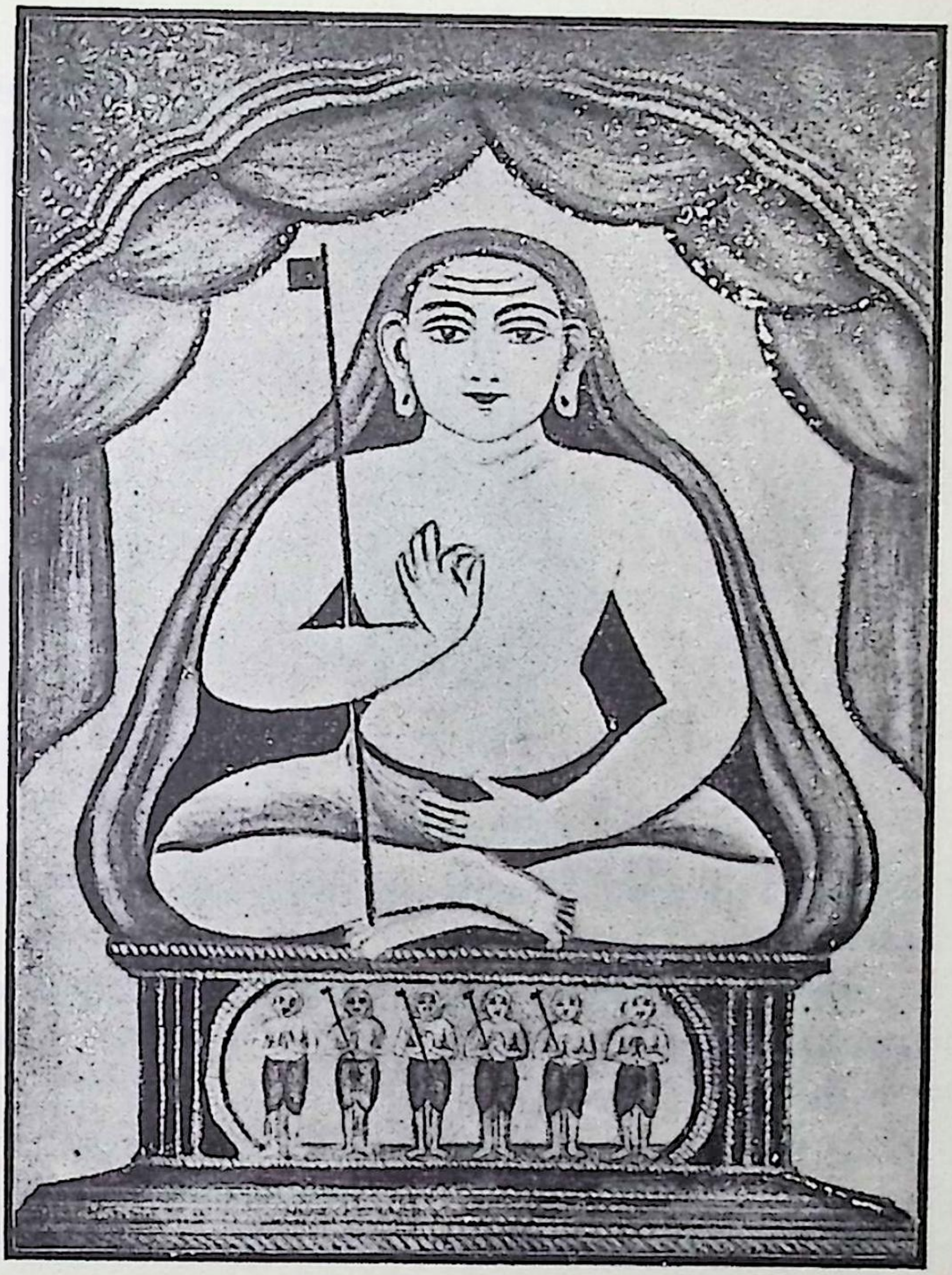

श्री काञ्चीकामकोटिपीठ में कामाक्षीदेवीजी के मंदिर में
श्री आदिशंकराचार्यजी के अधिष्ठानसिद्धिस्थान में रखी हुई
शिष्यों के साथ आचार्य की पुरुषाकृतिसमानमूर्ति ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीगुरुभ्यो नमः

श्रीचन्द्रमौळीश्वराय नमः

स्वस्ति श्रीमदखिलभूमण्डलालङ्कार-त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवतासेवित श्रीकामाक्षीदेवीसनाथ-श्रीमदेकाम्रनाथ श्रीमहादेवीसनाथ—श्रीहस्तिगिरिनाथसाक्षात्कारपरमाधिष्ठान—सत्यव्रतनामांकितकाञ्चीदिव्यक्षेत्रे – शारदामठसुस्थितानां अतुलित—सुधारसमाधुर्यकमलासनकामिनीधम्मिल्ल-संफुल्लमल्लिकामालिकानिष्यन्दमकरन्दझरीसौवस्तिकवाङ्मनिगुम्भविजृंभणानन्दतुन्दिलितमनीषि-मण्डलानां अनवरताद्वैतविद्याविनोदरसिकानां—निरंतरालंकृतीकृतशान्तिदान्तिभूम्नां सकलभूवन-चक्रप्रतिष्ठापकश्रीचक्रप्रतिष्ठा—विख्यातयशोलंकृतानां—निखिलपाषण्डषण्डकण्टकोद्त्पाटनेन विशदीकृतवेद—वेदान्तमार्गषण्मतप्रतिष्ठापकाचार्याणां श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्रीमदादिशंकरभगवत्पादाचार्याणां इदानींन्तन—श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधिप—श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वती संयमीन्द्राणां श्रीजयेन्द्रसरस्वतीसंयमीन्द्राणां च दिव्यचरणारविन्देषु सविनयं सप्रश्रयं साञ्जलिबन्ध च अनन्तकोटिप्रणामान् समर्पयामः ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हमारा धर्म

विषय - सूची

विषय पृष्ठ संख्या

संस्कृत माला भाग – ७

१.	ब्रह्मतेज की विजय	१
२.	अभिमान का त्याग	५
३.	महर्षि दध्यङ्ङाथर्वण की क्षमाशीलता	६
४.	सतीत्व की महिमा	१३
५.	साधना का महत्व	१७
६.	संगति का फल	२१
७.	तपस्या का प्रभाव	२५
८.	यज्ञ का प्रभाव	२८
९.	एक बालक का सत्य प्रेम	३३
१०.	पुराण-परिचय	३७
११.	दर्शन शास्त्र	५०

संस्कृत माला भाग – ८

१२.	श्रीमद्भगवद्गीता	७७
१३.	उपनिषद्	१०४

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीरामजयम्

आजकल देश में, घर में तथा विद्यालयों में विद्यार्थियों को न्याय और धर्म की बातों का ज्ञान कराने के लिये घर के बड़े बूढ़ों को मालूम नहीं है और न ही उनकी इच्छा है कि उनके बच्चों को न्याय और धर्म की शिक्षा मिले। विद्यालय में भी विद्यार्थियों को इसकी शिक्षा देने के लिये अध्यापकों को भी वक्त (समय) नहीं है।

अगर यह हाल इसी तरह रहा तो इसका परिणाम भविष्य में आने वाली संतति या प्रजा के लिये कष्टप्रद होगा। उनके जीवन काल में उनके संमुख आये कष्टों को हटाने या उनका निवारण करने में वे असमर्थ रहेंगे।

इसलिये घर में, विद्यालय में प्रतिदिन या सप्ताह में कुछ घंटे अच्छी और रोचक कहानियों का पठन करना चाहिये तथा न्याय और धर्म की शिक्षा, विद्यार्थियों को लेनी चाहिये। इसी उद्देश्य के लिये इस किताब की छपाई हुई है। इसमें दिये गये अध्यायों का प्रतिदिन या कम से कम एक सप्ताहमें एक अध्याय विद्यार्थियों को पढ़ाना चाहिये। विद्यालयोंमें पढ़ाये गये न्याय और धर्म की बातों को साल में एक बार परीक्षा लेकर विद्यार्थियों को पुरस्कार भी देना चाहिये।

प्रचारक :
सेठ रामेश्वरलाल
जमशेदपुर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संस्कृति-माला

(भाग ७)

ब्रह्मतेजकी विजय

प्राचीन कालमें सप्तसिन्धु प्रदेशमें इक्ष्वाकु नामक वंशमें एक बड़ा प्रतापी राजा था। उसका नाम था त्रैवृष्णत्र्यरुण। वह राजा बड़ा न्यायपरायण था तथा अपनी प्रजाको सब प्रकार से प्रसन्न रखता था। उसके राज्यमें कभी भी अकाल नहीं पड़ता था। न किसीकी उसके शासनकालमें अकाल मृत्यु ही होती थी। शत्रु उसके नामसे ही काँपते थे। देवराज इन्द्रकी भी युद्धोंमें सहायता करनेके लिये वह प्रायः जाया करता था। शस्त्र तथा शास्त्र–दोनों विद्याओंमें वह पारंगत था। ऋषिलोग निर्भय होकर यज्ञोंके अनुष्ठानमें लगे रहते थे, जिससे संतुष्ट होकर देवराज प्रचुर वर्षा कर प्रजाको आनन्दयुक्त करते थे। सभी प्रजाजन अपने-अपने कार्यमें लीन थे। कहीं चोरी और डाके आदिका भय नहीं था।

उसके पुरोहित भी राजाके ही समान बड़े ब्रह्मतेजयुक्त और शस्त्रविद्यापारंगत थे। उनका नाम था महर्षि वृश। इनके मुखमण्डलपर एक अपूर्व आभा विराजमान थी, जिसे देखकर स्वयं देवता भी आश्चर्य करते थे। वे जितने सौम्य थे उतने ही उग्र भी थे। राजाके मना करनेपर भी वे प्रत्येक युद्ध में राजाके साथ रहते थे और अपने युद्ध-कौशलसे बड़े-बड़े वीरोंको चकित कर दिया करते थे। यद्यपि वे वृद्ध हो चुके थे फिर भी इनमें युवकोंका-सा उत्साह था। ऐसे कर्मठ पुरोहितको पाकर राजा त्र्यरुण अपनेको कृतार्थ मानता था। राजाके धनुषसे जितना प्रजाका हित होता था, उससे कहीं अधिक भलाई पुरोहितके अथर्ववेदके मन्त्रोंसे होती थी। राजा और पुरोहितके सहयोगसे प्रजामें सब प्रकारका शान्ति-सुख था। सप्तसिन्धु प्रदेश स्वर्गके समान सब भौतिक सुखोंसे युक्त बन गया था।

एक बार राजाने विश्व-विजयके लिये संग्रामकी तैयारी की। सब सेनाओंको सज्जित कर राजा पुरोहितके पास आकर बोला —'महर्षे! एक निवेदन श्रीमान्‌से मुझे करना है। आशा है, आप मेरे निवेदनको अवश्य पूरा करनेकी कृपा करेंगे। महर्षिने भी राजाकी प्रार्थनाको स्वीकार करते हुए कहा—'राजन्! क्या कभी मैंने तुम्हारी किसी प्रार्थनाको ठुकराया है? मैं सदा तुम्हारी सहायता करनेके लिये प्रस्तुत रहा हूँ। कहो, तुम मुझसे क्या चाहते हो? राजाने विनम्रतापूर्वक कहा—'मैं विश्वविजय करना चाहता हूँ और मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि इस विजय–यात्रामें आप मेरे सारथि बनकर रथका संचालन करें। आपके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हो सहयोगसे मेरी विजययात्रा सफल हो सकती है।' महर्षि वृश राजाकी इस प्रार्थनापर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'राजन्! तुमने वास्तवमें पुरोहितके महत्त्वको समझा है। पुरोहित राष्ट्रकी प्रतिष्ठा है। जिस प्रकार बिना वायुकी सहायताके अग्नि कुछ नहीं कर सकता, उसी प्रकार बिना पुरोहितकी सहायताके राजा प्रजाका कल्याण करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकता। पुरोहित वैश्वानर अग्निके समान हैं। इसके पाँचों अंगोंमें पाँच ज्वालाओंका निवास है। राजाको चाहिये कि वह उसकी इन पाँचों ज्वालाओंको शान्त रक्खे। आगमनके समय स्वागतका वचन कहनेसे उसकी वाणीमें स्थित ज्वाला शान्त होती है। पैर धोनेसे उसके पैरोंमें स्थित अग्नि शान्त हो जाती है। वस्त्रों तथा आभूषणोंसे सत्कार करनेपर उसकी त्वचामें रहनेवाली ज्वाला शान्त होती है। भोजनसे तृप्त करनेपर उसके हृदयमें स्थित अग्नि शान्त हो जाती है और उसका उपदेश सुननेसे उसके मस्तिष्ककी अग्नि शान्त हो जाती है। उसका स्वागत आदि न करनेपर वह अग्नि बनकर सारे राष्ट्र को नष्ट कर सकता है; परंतु वही प्रसन्न होनेपर राष्ट्रकी रक्षा कर सकता है। पुरोहित राष्ट्रका रक्षक कहलाता है। ऐसे पुरोहितके न मिलनेपर राजा कभी प्रजाकी भलाई नहीं कर सकता। राजाकी विजयका श्रेय पुरोहितपर ही है। मुझे तुम्हारी इस प्रार्थनापर बड़ी खुशी है।'

राजाने पुरोहितकी सारथि बननेकी स्वीकृति पाकर युद्धके लिये यात्रा करनेके हेतु तुरन्त आज्ञा दी। सब सेनाएँ युद्धके लिये तैयार हो गयीं। युद्धके बाजे बजने लगे, जिससे कायरोंके हृदयोंमें भी अपूर्व उत्साहका संचार होने लगा। नगरमें सर्वत्र आनन्दकी लहर फैल गयी। त्र्यरुणने भी कवच और शिरस्त्राण धारण कर लिये। अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे पूर्ण तरकश उसने अपनी पीठपर बाँध लिया और युद्धार्थ तैयार हो वह रथकी प्रतीक्षा करने लगा। राजाके लिये रथ सजाया जा रहा था। दो बड़े वेगवाले घोड़े उसमें जोते गये। अस्त्रों तथा शस्त्रोंसे सुसज्जित अनेक वीर रथके आगे-पीछे खड़े थे। सभी महर्षि वृशके आनेकी प्रतीक्षामें थे। इतनेमें युद्धवेष धारण किये हुए महर्षि आ पहुँचे और रथके अग्रभागपर आरूढ़ हो अश्वोंको चलानेके लिये उन्होंने लगाम हाथमें धारण की। जोर-जोर से बाजे बजने लगे। यात्रा प्रारम्भ हो गयी। नगरके मार्गपर दोनों ओर स्थित घरोंकी छतोंसे नगरकी स्त्रियोंने फूलोंकी वर्षा प्रारम्भ की। पुरुष क्षात्रतेजके साथ ब्रह्मतेजका मेल देखकर अति प्रसन्नताके साथ मार्गमें दोनों तरफ खड़े-खड़े पुलकित हो रहे थे। महर्षि वृशका जो शरीर वल्कल धारण करने योग्य था, वही आज कवच धारण किये हुए अपूर्व शौर्य प्रदर्शित कर रहा था।

राजा जहाँ भी गया वहीं विजयश्रीने उसे वरण किया। प्रतिपक्षियोंने आत्मसमर्पण कर दिया। राजा त्र्यरुण भी अन्य राजाओंकी राज्य-लक्ष्मी लूटनेका अभिलाषी नहीं था। वह तो केवल अपना यश फैलानेके लिये ही इस विजयके लिये निकला था, अतः जिन-जिन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

राजाओंने आत्मसमर्पण कर दिया, उनको पुनः उन-उनकी राजगद्दीपर स्थापित कर दिया। महर्षि वृशके अपूर्व प्रतापसे राजा त्र्यरुण सर्वत्र अपनी कीर्ति-पताका फहराता हुआ अति प्रसन्नतापूर्वक वापस अपनी राजधानीको लौट आया।

दिग्विजय करके वापस लौटे हुए राजाका स्वागत करनेके लिये सारे नागरिक नर-नारी नगरमें खड़े हुए राजाके नगर-प्रवेशकी प्रतीक्षा करने लगे। इतनेमें राजाका रथ अति तीव्र वेगसे नगरमें आया। भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र होती है। वह किसीके भी गर्वको सहन कर नहीं सकता। वह राजाके विजयमदको चूर-चूर करनेके लिये तत्पर था, अतः उसने एक ऐसा नाटक रचा, जिससे राजा त्र्यरुणका अभिमान समूल नष्ट हो गया। ज्यों ही राजाका रथ वेगसे नगरमें प्रवेश कर रहा था, त्यों ही भीड़ में से एक अल्पवयस्क बालक राजाके रथके नीचे दब गया और लोगों द्वारा प्रयत्न करनेपर भी उसके प्राणपखेरू उड़ गये। वह था एक ब्राह्मणका बालक। राजा त्र्यरुण और महर्षि वृशके होश उड़ गये। दोनोंके हृदय पापके भयसे काँप उठे; परतु दोनों ही अपना-अपना बचाव करनेके लिये एक दूसरेको इस कार्यके लिये दोषी सिद्ध करने लगे। राजा कहता था कि 'दोष मेरा नहीं है। इस हत्याका सारा उत्तरदायित्व महर्षि वृशपर है। मैं केवल महर्षि वृशके हाथकी कठपुतली हूँ। घोड़ोंकी लगाम इनके हाथमें थी। अगर ये रथको रोक लेते तो कभी इस ब्राह्मणबालककी इस प्रकार मृत्यु नहीं होती। मैं तो केवल रथके अन्दर बैठा हुआ सारा कार्य उदासीनकी भाँति देख रहा था। इस हत्याका पाप तो महर्षिको ही लगेगा। मैं इसका कथमपि भागी नहीं हो सकता।' उधर पुरोहितजी अपनेको निर्दोष बतलाते हुए कहने लगे—"मैं इस पापका भागी बिल्कुल नहीं हूँ। पाप और पुण्यका भागी स्वामी हुआ करता है। मैं केवल स्वामी की आज्ञाका पालन करनेवाला सेवक हूँ। जिस प्रकार विजयका सारा फल राजाको ही मिला है, उसी प्रकार इस पापका फल भी राजाको ही भोगना चाहिये। सेवकको तो स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ही पड़ता है। उसका फल तो स्वामी ही भोगता है न कि सेवक। इसलिये यद्यपि इस ब्राह्मण-बालककी मृत्यु मेरी असावधानीसे ही हुई है तथापि इसका फल राजाको ही भोगना पड़ेगा, न कि मुझे।" इस तरह राजा और पुरोहित अपने-अपने पक्षका बचाव करते हुए आपसमें एक दूसरेको दोषी बतला रहे थे। प्रजाको इस बातका निर्णय करना था कि वस्तुतः उन दोनोंमें दोषी कौन था। आखिरकार इक्ष्वाकुओंने पक्षपातवश इस सारे पापका भागी महर्षि वृशको ठहरा दिया और राजा त्र्यरुणको पापमुक्त घोषित कर दिया।

महर्षिने चुपचाप इस निर्णयको स्वीकार कर लिया; परंतु उनके हृदयमें घृणाकी भावना उत्पन्न हो गयी और वे तुरन्त इक्ष्वाकुओंके राज्यको छोड़कर चले गये। महर्षिके चले जानेपर ऐसी दैवी घटना हुई कि अग्निदेवका तेज बिल्कुल नष्ट हो गया। अग्निके निस्तेज हो जानेसे प्रजाका भोजन पकाना भी सर्वथा बंद हो गया। लाख प्रयत्न करनेपर भी अग्नि नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रज्वलित होती थी। सूर्यका प्रकाश ही सर्वथा नष्ट हो गया। फलस्वरूप सारी प्रजामें त्राहि-त्राहि मच गयी। प्रजा अत्यन्त संत्रस्त हो उठी और प्राणी मारे भूखके तड़पने लगे। प्रजाने इस सारी विपत्तिका कारण राजाको बतलाया। प्रजा राजाको इस अत्याचारके कारण गालियाँ देने लगी और राजाको दण्ड देनेके लिये उतारू हो गयी। राजा त्र्यरुण भी प्रजाके इस भयंकर संतापको देखकर बड़ा चिन्तित हुआ। वह तुरन्त महर्षि वृशकी खोजमें निकल पड़ा। बड़े कष्टसे पुरोहित उसे मिले। राजाने पुरोहितके पैर पकड़कर प्रजाका सारा कष्ट कह सुनाया। महर्षिका नवनीतके समान कोमल हृदय प्रजाके कष्टकी कहानी सुनकर पिघल गया। उन्होंने तुरंत अपने योगबलसे सारी बातका ज्ञान प्राप्त कर लिया और राजासे कहा—
—"आपके अन्तःपुरमें एक रानी पिशाचिनी है। उसने अग्निदेवका पान कर लिया है, अतः अग्नि बिल्कुल निस्तेज हो गया है। मेरे भयसे तो वह ऐसा नहीं करती थी परंतु जब उसे मेरे चले जानेका पता चल गया, तब वह निर्भय हो गयी और अग्निदेवका पान कर गयी।' यों कहकर महर्षिने राजाको उसे दण्डित करनेकी आज्ञा दी। राजाने महर्षिकी आज्ञासे उस पिशाचिनीको दण्ड देकर अग्निदेवको पुनः बन्धनसे मुक्त करवाया। प्रजा पुनः अग्निदेवके तेजयुक्त हो जानेसे अत्यन्त प्रसन्न हुई और अपना-अपना कार्य सम्पादन करने लगी। सत्य है—ब्रह्मतेजका अपमान करनेपर केवल क्षत्रबल प्रजाका कल्याण करनेमें कभी समर्थ नही होता है। बुद्धिबलके बिना केवल शारीरिक बल कभी सफल नहीं हो सकता। बुद्धिबल ही तो ब्रह्मबल है और पुरोहित उसीका प्रतीक है। राष्ट्रकी रक्षाके लिये उसका होना नितान्त आवश्यक है।

०००

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिमानका त्याग

प्राचीन कालमें एक समय असुरोंने बड़ा भारी आतंक फैलाना प्रारम्भ किया। सारा संसार उनके आतंकसे त्रस्त होकर त्राहि-त्राहि करने लगा। निरपराध लोगोंको सताना ही असुरोंने अपना एकमात्र लक्ष्य बना लिया। ऋषि, मुनि, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और यक्ष सभी अत्यन्त आर्त होकर सुरराज इन्द्रके यहाँ पुकार करनेके लिये गये और अपना कष्ट उनसे निवेदन कर असुरोंको मारनेके लिये प्रार्थना करने लगे। सुरोंके स्वामी इन्द्रने उनका कष्ट दूर करनेका वचन देकर अग्नि, वायु, सूर्य, वरुण, और पूषा आदि देवताओंको बुलाकर असुरोंका दमन करनेका आदेश दिया। सभी देवता अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर असुरोंको परास्त करनेके लिये पहुँचे। उधर असुर भी युद्धके लिये तैयार थे। दोनों दलोंमें भयंकर संग्राम हुआ। अन्तमें असुर लोग हारकर युद्धस्थलसे भाग गये। वे देवोंसे डरकर पर्वतोंकी गुफाओंमें जाकर छिप गये।

उधर देवतालोग विजयसे इतने प्रसन्न हुए कि वे हर्षसे फूले न समाते थे। उनको इस विजयपर बड़ा भारी गर्व था। अग्निदेव समझते थे कि उन्हीं (अग्नि) के प्रताप से असुर-लोग परास्त हुए हैं। अग्निको अपने तेजका बड़ा भारी अभिमान था। वह उस परम शक्तिको भूल गया था, जिसके थोड़े-से अंशसे उसे (अग्निदेवको) इतना तेज मिला हुआ था। वह परम शक्ति थी परमेश्वर, जिसकी इच्छाके बिना इस संसारमें पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसीकी शक्तिसे यह सारा चर और अचर संसार अपनी स्थिति बनाये हुए है तथा उसीकी शक्तिसे अग्निदेव जलता है—यह सब भूलकर अग्निदेव अपनेको ही सबसे बड़ी शक्ति मानकर अभिमानमें फूल गये। वायुदेव भी अपने वेगपर अत्यन्त प्रसन्न थे। वे अपनेको ही असुरोंकी पराजयका एकमात्र कारण समझते थे। इन्द्रदेव अपने वज्रकी शक्तिपर बड़े भारी गर्वमें डूबे हुए थे और समझते थे कि मैं जन्मसे ही देवोंका अधिष्ठाता हूँ। मैं ही सारी पृथ्वीको धारण किये हुए हूँ। आकाशको मेरी ही शक्तिने थाम रक्खा है। पहाड़ों को मैंने ही स्थिर कर रक्खा है। सूर्यदेव अपनेको ही सर्वेसर्वा समझ बैठे थे और अपनेको ही असुरोंको हरानेवाला बतला रहे थे। वरुणदेव भी गर्वमें किससे कम थे। वे कहते थे असुरोंको हराने का श्रेय मुझे ही है। इस प्रकार इन सभी देवताओंके पैर जमीनपर ही नहीं पर रहे थे। ये सभी अपने-अपने को ही कर्ता-धर्ता समझने लगे थे और जिस भगवान्‌की दयासे असुरोंकी हार हुई थी, उसे ये लोग बिल्कुल भूल गये थे।

वह परमपिता परमात्मा भी इन देवताओंके अभिमानको बैठा-बैठा देख रहा था। उसने उन देवताओंके अभिमानकी परीक्षा करनी चाही। उसे यह देखना था कि इन देवताओं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिमान झूठा है या सच्चा। अपने पुत्रों - इन देवताओंके अभिमानको देखकर उस परम पिताको लज्जा आ रही थी। इस विजयसे देवताओंको घृणा होनी चाहिये थी; क्योंकि उनकी विजयसे असुरोंको कितना कष्ट भोगना पड़ा; परंतु वे उल्टा इससे प्रसन्न थे और अभिमानयुक्त थे। भगवान्ने सोचा कि यदि देवतालोगोंका अभिमान सदाके लिये रह गया तो उनका पतन निश्चित है। इसलिये इनको शिक्षा देनी चाहिये। यह विचारकर भगवान्ने एक जबरदस्त यक्षका रूप धारण किया और देवताओंको ललकारा। सभी देवगण उस यक्षको देखकर आश्चर्य में पड़ गये। सभी सोचन लगे कि यह नवीन महाप्राणी कौन है? परंतु बहुत सोच-विचार करने पर भी किसीके कुछ समझमें नहीं आ सका। तब देवगण एकत्रित होकर अग्निके पास आये और उससे प्रार्थना करने लगे —'हे अग्निदेव! आप हमारेमें प्रधान हैं। आप सबसे अधिक तेजस्वी हैं। आपमें सारे विश्वको जला डालने की शक्ति है, अतः आप ही पता लगाइये कि यह नवीन महाप्राणी कौन है?

अग्नि भी देवोंकी प्रार्थना स्वीकार कर उस यक्षका परिचय प्राप्त करनेके लिये गया। अग्नि उस यक्षके पास जाकर बड़े ध्यानसे उस यक्षको देखने लगा; परंतु उसके विषयमें कुछ परिचय न पा सका।

'आप कौन हैं?' यक्षने अग्निसे पूछा।

अग्नि बड़े अभिमानपूर्वक बोला—"क्या तुम मुझे नहीं जानते? मेरा नाम सारे जगत्में विख्यात है। मैं हूँ अग्नि। मुझमें सारे संसारको जला डालनेकी ताकत है।"

'क्या आप सारे संसार को जला सकते हैं?' यक्षने फिर अग्निसे कहा।

'हाँ निस्संदेह!' अग्निदेवने गर्वसे उत्तर दिया।

यक्षने अग्निको एक तिनका दिया और उसे जलानेके लिये अग्निसे प्रार्थना की। अग्निने यथाशक्ति उस तिनकेको जलानेका प्रयत्न किया; परंतु व्यर्थ। उसपर अग्निदेवको अपने झूठे अभिमानपर बड़ी भारी लज्जा आयी और वह चुपचाप वहाँसे चला गया। अब अग्निको अपनी वास्तविक स्थितिका ज्ञान हुआ। उसने देवोंके पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। देवोंने इतना होनेपर भी अपनी हार स्वीकार नहीं की और वायुके पास जाकर उससे प्रार्थना करने लगे —'हे वायुदेव! आप सब देवोंमें अधिक वेगवान् है। आपमें सारे ससारको उड़ा देनेकी सामर्थ्य है।' यह सुनकर वायु बड़ा खुश हुआ और बोला—'इस संसारमें मेरे समान वेगवाला कौन है? मैं सारी दुनियाको हिला सकता हूँ और चाहूँ तो प्रलय भी कर सकता हूँ। आप मुझसे क्या काम करवाना चाहते हैं?' देवोंने निवेदन किया—'क्या आप उस महाप्राणीका परिचय ला सकते हैं जिसने देवोंको ललकारा है?' वायुने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवोंकी प्रार्थनाको सहर्ष स्वीकार कर लिया और यक्षका परिचय प्राप्त करनेके लिये प्रस्थान किया।

वायु भी अग्निके समान यक्षके पास जाकर घूर-घूरकर उसकी ओर देखने लगा। यक्षने उससे भी पूछा—'आप कौन हैं?' वायुने अभिमानपूर्वक कहा—'मेरा नाम है वायु और सारे संसारको कँपा देनेकी मेरे अंदर शक्ति है।' इतना सुननेपर यक्षने वायुको एक तिनका देकर उसे उड़ानेके लिए उससे प्रार्थना की। वायु यक्षकी बातपर बड़ा हँसा और बोला —'तुम क्या अनजानके समान बातें करते हो? मैं हूँ विश्वको हिला देनेवाला वायु!' वायुने भरसक उस तिनकेको उड़ानेका प्रयत्न किया; परंतु उसका सारा प्रयत्न निरर्थक गया। वायु भी अग्निके समान लज्जित होकर चला गया और अपनी असमर्थतापर खेद प्रकट करने लगा।

अब भी देवतालोग निराश नहीं हुए और वे तुरंत इन्द्रके पास गये। वे इन्द्रसे बोले —'आप जन्मसे ही देवोंके स्वामी हैं। आपने ही इस भूमिको धारण कर रक्खा है। आपने ही असुरोंका संहार किया है।' अपनी प्रशंसा सुनकर इन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला —'मुझसे आप क्या चाहते हैं?' देवोंने इन्द्रसे भी वही प्रार्थना की जो अग्नि और वायुसे की थी। इन्द्र भी देवोंकी प्रार्थना सुन उस स्थानपर पहुँचा, जहाँपर वह यक्ष प्रकट हुआ था; परंतु इन्द्रको देखते ही यक्ष अन्तर्हित हो गया। इन्द्र अपने अभिमानको चूर्णित होता हुआ देख बड़ा घबराया; परतु यक्षका परिचय प्राप्त करनेकी दृढ़इच्छासे वहीं बैठकर यक्षकी भक्ति करने लगा।

जिस स्थानपर यक्ष अन्तर्हित हो गया था, उसी जगह अचानक एक जबरदस्त प्रकाश-पुंज उत्पन्न हुआ। वह प्रकाशपुञ्ज धीरे-धीरे एक दिव्य स्त्रीके रूपमें बदल गया। वह थी भगवती उमा हैमवती। वह भगवान्की ही शक्ति थी।

उसके दर्शनसे इन्द्र कृतकृत्य हो गया और अपनी वास्तविक स्थितिको समझ गया। उस भगवती उमा हैमवतीने इन्द्रको सम्बोधित करके कहा—"हे इन्द्र! तुमलोग अपनेको जो अज्ञानवश सारे संसारके नियन्ता और शासक समझने लगे हो, यह तुम्हारा बिलकुल भ्रम है। तुम स्वेच्छासे साँसतक भी नहीं ले सकते। इस सारे संसारका नियमन करनेवाली एक दूसरी ही शक्ति है, जो प्राणिमात्रके घट-घटमें रहती है। जिस तरह तिलोंमें तेल, दूधमें घी और अरणिमें अग्नि रहते हुए भी किसीको दिखायी नहीं पड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार सबमें व्यापक होते हुए भी वह शक्ति इन इन्द्रियोंके द्वारा अनुभूत नहीं की जा सकती। वह सर्वव्यापक है। सारे संसारमें व्याप्त होने के कारण ही उसे विष्णु कहा जाता है। उसमें सब शक्तियाँ हैं, इसीलिए उसे भगवान् कहते हैं। तुमलोग उस सर्वान्तिर्यामीके रूपको अच्छी तरह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं पहचानते हो, तभी तुमको इतना झूठा अभिमान है। सूर्य और चन्द्रमा उसीकी रोशनीसे चमकते हैं। हवा उसीके वेगसे चलती है। तुम उसीकी कृपासे देवराज बने बैठे हो। मनुष्योंकी बोलियोंमें वही बोलता है। पक्षियोंकी चह-चहाहटमें वही चहकता है। क्या-क्या बतलाया जाय। संसारके प्रत्येक परमाणुकी स्थिति उसी परमात्माकी कृपासे है। मर्यादाको रखनेके लिये असुरोंकी पराजय भी उसीने की थी। तुमलोग उसको पहचानो और उसीकी शरणमें जाओ।

यह सुनकर इन्द्रके ज्ञाननेत्र, जो अबतक बंद थे, खुले। उसने यह सारी कथा अन्य देवोंसे कही। देवोंको भी आत्मज्ञान हुआ। वे भी अबतक अन्धकारमें भटक रहे थे परंतु अब सही रास्तेपर आ गये। सच है, जबतक मनुष्य मिथ्या अभिमानमें फँसा रहता है, तबतक उसे सुख और शान्ति नहीं मिलते हैं। देवता भी जबतक मिथ्या अभिमानमें चूर रहे, तबतक उन्हें शान्ति नहीं मिली। उन्हें ही सबसे पहले आत्मज्ञान हुआ, इसीलिये अग्नि, वरुण, वायु और इन्द्र आदि देव कहलाए।

मनुष्यको मिथ्या अभिमानमें फँसकर उस परमपिता परमेश्वरको नहीं भूल जाना चाहिए, जिसकी अनुपम अनुकम्पासे मनुष्य उन्नतिके शिखरपर आरूढ़ हुआ है। हमेशा मनुष्यको उस प्रभुकी कृपाका कृतज्ञ रहना चाहिए, अन्यथा पतन निश्चित है।

००

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महर्षि दध्यङ्ङाथर्वणकी क्षमाशीलता

वितस्ता नदीके तटपर एक अत्यन्त पवित्र आश्रम था, जिसमें दस हजार छात्रोंको भोजन-वस्त्र आदि निःशुल्क देकर महर्षि दध्यङ्ङाथर्वण विविध विद्याओंका दान दिया करते थे। महर्षिके पास यद्यपि दस हजार छात्र अध्ययन करते थे, परंतु वे प्रत्येक छात्रको व्यक्तिगत रूपसे सम्यक् जानते थे। एक दिन प्रातःकाल महर्षि स्नान आदि नित्य कार्योंसे निवृत्त होकर अग्निहोत्र-शालामें बैठे सब छात्रोंके साथ अग्निहोत्र कर रहे थे। अग्निहोत्रके पवित्र धूमसे सारा वायुमण्डल सुगन्धित हो रहा था। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चल रहा था। आश्रमके वृक्ष पुष्पोंसे युक्त हुए भगवान् सूर्यको मानों अर्घ्य देनेके लिए खड़े थे। भगवान् भास्करका उदय होनेहीवाला था। वैदिक मन्त्रोंकी उच्च ध्वनिसे सब दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं। छात्रवर्गमें उस दिन एक नवीन व्यक्ति आकर मिल गया। सभी छात्र हवनके पश्चात् अग्निकी परिक्रमा कर अध्ययनार्थ प्रस्तुत होनेके लिये महर्षिको प्रणाम करके अपने-अपने आसनोंपर बैठने लगे। जब सभी छात्र अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये, तब वह नवागन्तुक छात्र भी ऋषिके पास आया और प्रणाम कर आसनपर बैठने लगा।

महर्षिने उस अपरिचित छात्रको अपने पास बुलाकर उससे पूछा—'तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारे आनेका कारण क्या है?' महर्षिके प्रश्नको सुनकर उस नवीन अपरिचित विद्यार्थीने नम्रतापूर्वक अपना परिचय देते हुए कहा—'महाराज! मैं मधुविद्या (ब्रह्मज्ञान) ग्रहण करने के लिये आपकी सेवामें आया हूँ। मैंने आपकी बड़ी भारी प्रशंसा सुनी है। आप ही एकमात्र ब्रह्मज्ञानको जाननेवाले हैं। इसलिए यदि श्रीमान् मुझे ब्रह्मज्ञान देनेकी प्रतिज्ञा करें तो आपको अपना परिचय दे सकता हूँ। महर्षिने तुरंत उसे मधुविद्या देनेकी प्रतिज्ञा कर कहा—'अब तुम मुझे अपना परिचय दो।' महर्षिके मधुविद्या पढ़ानेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो जाने पर उस नवागन्तुकने अपना परिचय इस प्रकार देना शुरू किया—'मैं देवोंका राजा इन्द्र हूँ। स्वर्गलोकसे आपकी कीर्ति सुनकर मधुविद्या सीखनेके लिये यहाँ आया हूँ। आपकी कीर्ति ब्रह्मविद्याके कारण सारे मनुष्यलोकमें फैली हुई है। अब मुझे शिष्य बनाकर स्वर्गलोकमें भी अपनी कीर्ति फैलाइये।

महर्षि प्रतिज्ञा कर चुके थे, इसलिये यद्यपि वे इन्द्रको ब्रह्मविद्या पढ़ानेके लिये बाध्य थे तथापि महर्षि कुछ क्षणके लिये असमंजसमें पड़ गये और बोले—'केवल उन्हीं व्यक्तियोंको यह विद्या सिखायी जाती है, जो अधिकारी हों। तुम अभी विद्याके अधिकारी तो मुझे नहीं प्रतीत होते हो, परन्तु प्रतिज्ञाबद्ध होनेके कारण मुझे तुमको ब्रह्मविद्याका उपदेश देना पड़ेगा।'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri

यह कहकर महर्षिने इन्द्रको ब्रह्मविद्याकी शिक्षा देकर अन्तमें उससे कहा—'तुम्हारा हृदय अभीतक विषय-वासनाओंसे कलुषित है, इसलिये तुमको इस विद्यासे शान्ति मिल सकेगी, इसमें मुझे पूर्ण संदेह है। केवल शान्त, भोगविलासोंसे उदासीन, जितेन्द्रिय और सहनशील मनुष्य ही इस विद्याका अधिकारी होता है। उसे ही इस विद्यासे शान्ति-लाभ हो सकता है। भोग-विलासोंमें फँसा रहनेवाला कितना भी बड़ा क्यों न हों, उसमें और एक कुत्तेमें कोई अन्तर नहीं है।'

इन्द्र इस विद्याको प्राप्त करनेका किसी भी प्रकारसे अधिकारी नहीं था। महर्षिने केवल प्रतिज्ञा-पालनके लिये ही विद्याका उसे दान दिया, परंतु अनधिकारीको विद्या कभी भी विनय नहीं प्रदान करती, उलटा विद्यासे वह उन्मत्त हो जाता है। इन्द्र भी महर्षिके ये वचन सुनकर अपनेको अपमानित समझकर बोला—'भविष्यमें यदि आपने यह विद्या किसीको कभी सिखलायी तो मैं वज्रसे आपकी गर्दन काट डालूँगा। मैंने आपसे कुछ शिक्षा ग्रहण की है, अतएव अबकी बार आपको क्षमा करता हूँ; परतु भविष्यमें ऐसे वचन मैं कभी सुननेके लिये तैयार नहीं हूँ।' महर्षिके चित्तपर इन्द्रके इन वचनोंका कुछभी प्रभाव नहीं पड़ा। वे आत्म-ज्ञानके कारण शरीरको तुच्छ समझते थे। उनकी दृष्टिमें मृत्यु नामकी कोई वस्तु थी ही नहीं। वे तो निर्भय होकर ब्रह्मानन्द-समुद्रमें गोते लगाते थे। उनको इस नश्वर शरीरका मोह ही नहीं था।

इन्द्र भी अपने स्थानपर चला गया। ब्रह्मविद्या पढ़कर भी उसके चित्तको शान्तिकी प्राप्ति नहीं हुई थी। न उसका अहंभाव ही नष्ट हुआ। कुछ समय पश्चात् वे ही अश्विनी-कुमार, जिनको इन्द्रने यज्ञमें भाग लेनेसे वंचित कर रक्खा था, महर्षिकी सेवामें उपस्थित हुए।

महर्षि दध्यङ्ङाथर्वणने उनका परिचय तथा आगमनका कारण पूछा। अश्विनी-कुमारोंने बड़े विनयकेसाथ अपना परिचय देते हुए कहा—'महर्षे! हम देवताओंके वैद्य अश्विनी-कुमार हैं। आप बड़े भारी ब्रह्मवेत्ता हैं, अतः हम ब्रह्मविद्या पढ़नेके लिये आपके चरणोंकी सेवामें आये हैं।' अश्विनीकुमारोंका विनययुक्त वचन सुनकर महर्षि बोले—"ब्रह्मविद्याको केवल वही पुरुष ग्रहण करनेका अधिकारी है जिसने शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान—इन छः साधनोंको प्राप्त कर लिया हो। विषय-वासनाओंमें फँसे हुए व्यक्तिको इस विद्यासे किसी प्रकारका शान्ति-लाभ हो नहीं सकता। विषय-वासनाओंमें फँसे हुए मनुष्यमें और एक सुअरमें क्या अन्तर है।' महर्षिके ये ज्ञानभरे वचन सुनकर अश्विनीकुमार निरभिमान होकर सविनय हाथ जोड़कर बोले—'महराज! हमारी हार्दिक इच्छा है कि आपसे यह विद्या सीखकर हम शाश्वत शान्ति प्राप्त करें।' महर्षिने उनके विनययुक्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

व्यवहारसे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन्हें ब्रह्मविद्या पढ़ाने का आश्वासन दिया। साथ ही इन्द्रका वचन भी उनको स्मरण हो आया।

अश्विनीकुमार अब वास्तवमें ब्रह्मविद्याके अधिकारी हो गये थे। उनके हृदयमें ज्ञानकी प्रबल पिपासा थी। तप और सत्यसे उनकी आत्मा पवित्र हो चुकी थी। यह सब देख महर्षि उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश देनेके लिये उत्सुक थे। परंतु इन्द्रकी बातका भी उनको स्मरण था, अतः आश्वासन दे देनेपर भी वे असमंजसमें पड़ गये।

महर्षिको असमंजसमें पड़े देख अश्विनीकुमारोंने कहा--'महाराज! हमने परोपकारको ही अपने जीवनका एकमात्र उद्देश्य बना लिया है। हमारे पास ऐसी औषधि है जिसके प्रभावसे हम मृतकको भी जीवित कर सकते हैं। हम आपकी आशंकाको भली प्रकार समझ गये हैं। हमने महर्षि च्यवनको वृद्धसे युवा बना दिया। च्यवनने वृद्धावस्थामें राजा शर्यातिकी पुत्री सुकन्याके साथ विवाह तो कर लिया, परंतु उनका जराजीर्ण शरीर सांसारिक भोग भोगनेमें सर्वथा असमर्थ था। महर्षि च्यवनकी यह दशा देखकर हमको उनपर दया आ गयी और हमने उनको पुनः भोग भोगनेमें समर्थ युवा बना दिया। इस प्रकारके कितने ही चमत्कार हम कर चुके हैं। इन्द्रसे यद्यपि हमारा प्रेम नहीं है, परंतु हमने द्वेष-भावनाको अपने हृदयसे निकालकर फेंक दिया है। अब हमने परोपकारको ही अपने जीवनका व्रत बना लिया है। हाँ, एक प्रार्थना हमारी आपसे है। आपके असली सिरको काटकर हम अलग रख देंगे और एक घोड़ेका सिर आपके शरीरपर लगा देंगे। उस घोड़ेके मुखसे आप हमें ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेकी कृपा कीजिये। इन्द्र जब आपके उस मस्तकको वज्रद्वारा काट डालेगा तब हम आपके असली मस्तकको पुनः जोड़कर आपको जीवित कर देंगे।'

महर्षिकी स्वीकृति उन्हें मिल गयी। उन्होंने भी तुरंत महर्षिका सिर उतारकर उसकी जगह घोड़ेका एक सिर मँगवाकर महर्षिके धड़पर जोड़ दिया। महर्षिने उनको इस मस्तकसे ब्रह्मविद्याका उपदेश देकर कहना प्रारम्भ किया--'हे स्वर्गके वैद्यो! यह शरीर नश्वर है। ज्ञानी पुरुषको मृत्युका कोई भय नहीं। विषय-वासनाएँ ज्ञानी मनुष्यके हृदयको कभी भी कलुषित नहीं कर सकतीं। वह तो सदा कमलपत्रके समान निर्लेप रहता है। केवल कर्तव्य-भावनासे ही वह सांसारिक व्यवहार निष्पन्न करता है। इस प्रकार निष्काम भावनासे उसका हृदय विशुद्ध हो जाता है। उसकी विषय-वासनाएँ ठीक उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार अग्निमें पड़कर तृणसमूह। विषय-वासनाओंमें फँसा हुआ मनुष्य तो कुत्तेके सदृश है।'

इन्द्रको जब इस बातका पता लगा, तब उसने आकर अपने प्रतिज्ञानुसार महर्षिका मस्तक काट डाला। अश्विनीकुमारोंके हृदयमें गुरुभक्तिका अनन्त सागर लहरें मार रहा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

था। उन्होंने तुरंत महर्षिका असली मस्तक जोड़ दिया और महर्षिको पुनः जीवित बना दिया। महर्षि उनकी गुरुभक्तिपर अति प्रसन्न थे। परम ज्ञानी महर्षि दध्यङ्ङाथर्वणको इस घटनासे किसी भी प्रकारका हर्ष या शोक नहीं हुआ। ज्ञानीके लिये यह शरीर एकमात्र व्यवहार-साधनका आश्रय है। इसके अतिरिक्त उसका शरीरके अंदर किसी प्रकारका मोह नहीं होता।

इन्द्रको भी यह कर्म कर डालनेके पश्चात् बड़ी भारी आत्मग्लानि हुई और वह महर्षिके चरणोंमें मस्तक टेककर निवेदन करने लगा—'हे महर्षे! मुझसे जो अपराध हुआ उसे आप क्षमा करें।' महर्षिने पूछा—'कौन-सा अपराध? तुम्हारा मुझसे क्या अपराध हो सकता है?' इन्द्रने निवेदन किया—'गुरुका मस्तक काटकर मुझ नीचसे महान् अपराध अज्ञानवश हो गया है। गुरुदेव! वह अपराध क्षमा करके मुझे पतनसे बचाइये।'

महर्षिने शान्त भावसे कहा—'मुझे तुम्हारे कार्यपर थोड़ा-सा भी क्षोभ नहीं है। अनधिकारीको विद्या मुझे नहीं देनी चाहिये थी, परतु मैं प्रतिज्ञाबद्ध था, इसीलिये मुझे तुमको ब्रह्मविद्याका उपदेश देना पड़ा। परन्तु ब्रह्मज्ञानीको इन बातोंपर क्रोध नहीं आया करता है।*

एक बार वृत्रासुरके साथ युद्ध होनेपर वही इन्द्र पुनः महर्षिकी सेवामें त्राण पानेके लिए गया और उसने वज्र बनानेके लिये ऋषिकी हड्डी माँगी। महर्षि दध्यङ् ने कहा—'देवराज! शरीर सबको प्रिय होता है, स्वेच्छासे इसे छोड़ना बड़ा कठिन हुआ करता है, किन्तु लोककल्याणके लिये मुझे यह स्वीकार है।' यों कहकर ऋषिने समाधि लगा ली। जंगली गौने उनके शरीरको अपनी कँटीली जीभसे चाट-चाटकर उनकी चमड़ीको उड़ा दिया। तब इन्द्रने उनकी तपस्यासे पवित्र हुई हड्डीको निकालकर उससे वज्र बनाकर वृत्रासुरका वध किया। इस वज्रके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुसे उस दुर्दान्त दैत्यका वध सर्वथा असम्भव था। सत्य है, महापुरुष कभी किसी अपराधीपर क्रोध नहीं करते। महापुरुषोंमें तथा साधारण मनुष्योंमें भेद भी यही है। यही नहीं, वे अपकारीके साथ भी उपकार ही करते हैं। हमें भी ऐसे महापुरुषोंसे शिक्षा ग्रहण कर अपने अंदर वर्तमान कलुषित वृत्तियोंको नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

---

*यह कथा उपनिषदोंके भाष्यरूपमें लिखित प्रसिद्ध 'आत्मपुराण' ग्रन्थके आधारपर लिखी गयी है। अन्यत्र यह कथा यों मिलती है कि इन्द्रने दध्यङ् ऋषिको मधुविद्याका उपदेश देकर यह कह दिया था कि आप यदि यह विद्या किसीको भी सिखायेंगे तो मैं आपका सिर उतार लूँगा। इसी प्रतिज्ञाके अनुसार अश्विनीकुमारोंको विद्या सिखानेपर इन्द्रने उनका मस्तक उतार लिया था।

यही कथा पुराणोंमें तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें महर्षि दधीचि तथा दध्यञ्चके नामसे आती है। इन दोनों कहानियोंमें एक ही तथ्य प्रकट किया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सतीत्व की महिमा

प्राचीन कालमें पश्चिम समुद्रके तटपर एक रमणीय आश्रम था। उसमें महर्षि भृगुनामक प्रसिद्ध ऋषि निवास करते थे। इन तपोधन ऋषिकी धर्मपत्नीका नाम था पुलोमा। वह दिन-रात पतिकी सेवामें लीन रहकर पतिको सर्वदा प्रसन्न रखती थी। वह पतिके अतिरिक्त अन्य सभी पुरुषोंको पिता और भ्राताके समान समझती थी। दोनों पति-पत्नी धर्मकार्य करते हुए प्रेमपूर्वक अपना जीवन बिताते थे। समय पाकर महर्षिकी पत्नी गर्भवती हो गयी। धीरे-धीरे वह गर्भ बढ़ने लगा।

एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि महर्षि भृगु प्रातःकाल नर्मदा नदीमें स्नान करने गये थे। आश्रममें ऋषिपत्नी अकेली थी। इसी बीचमें पुलोमा नामक राक्षस ऋषिके आश्रममें आ निकला। ऋषिकी पत्नीको अकेली पाकर उस राक्षसका मन उसपर मुग्ध हो गया। ऋषि-पत्नीने उस अतिथिके सत्कारके लिये कन्द-मूल-फलकी व्यवस्था की; परंतु उस राक्षसकी चेष्टाओंसे वह तुरंत उसके बुरे भावको ताड़ गयी और अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये चिन्तित हो उठी। निर्जन स्थान पाकर राक्षस कामान्ध होकर ऋषि-पत्नीका सतीत्व भंग करनेके लिये उद्यत हो गया। वस्तुतः उसका विवाह पहले उस राक्षससे ही होनेकी बात थी। परंतु राक्षसके क्रूर स्वभावको देखकर पुलोमाके पिताने अपनी पुत्रीका विवाह भृगु ऋषिसे कर दिया था। अवसर पाकर राक्षसने अग्निशालामें जलते हुए अग्निदेवसे पूछा —'क्या यह वही पुलोमा नहीं है जिसका विवाह मेरे साथ होनेवाला था।' अग्निदेवने उसके कथनकी पुष्टि कर दी। तब उस राक्षसकी कामाग्नि और भी अधिक प्रज्वलित हो उठी। वह वराहका रूप धारणकर ऋषिकी पत्नीको लेकर भागने लगा। पुलोमाके गर्भमें बालक था। इसलिये वह प्रतिरोध करनेमें असमर्थ होकर क्रोधसे जलने लगी। क्रोध करनेके कारण गर्भमें स्थित बालक तुरंत जमीनपर आ गिरा। वह बालक इतना तेजस्वी था कि उसके तेजसे वह राक्षस तुरंत भस्म हो गया। गर्भसे गिर जानेके कारण उस बालकका नाम 'च्यवन' पड़ा। माताने उस तेजस्वी बालकके प्रतापसे कष्टमुक्त होकर अपनेको कृतकृत्य माना। सारा आश्रम आनन्दसे पुलकित हो उठा।

आश्रममें लौटनेपर महर्षि भृगुको जब इस घटनाका पता चला, तब उनके क्रोधका ठिकाना न रहा और उन्होंने अग्निको सर्वभक्षी होनेका शाप दे दिया। तभीसे अग्निका अपना असली रूप नष्ट हो गया। अग्नि बड़ा दुखी हुआ। ब्रह्माजीने आकर उसे सान्त्वना प्रदान की और उसे शापमुक्त करनेके हेतु केवल क्रव्यादग्निको सर्वभक्षणका काम दे दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उधर उस अपूर्व बालकके प्रतापका समाचार सुनकर ऋषिके हर्षकी कोई सीमा न रही। पितासे उपनयन-संस्कारपूर्वक वेदोंका अध्ययन कर वह बालक ब्रह्मवेत्ता बन गया। पिताके ही समान सारी विद्याएँ उसके हस्तगत हो गयी। उसकी विद्वत्ताकी कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। उसने पुष्कर नामक तीर्थपर आश्रम बनाकर तपस्या करना प्रारम्भ किया। वह स्थान एकान्त और शान्तियुक्त था; अतः तपस्याके लिये अत्यन्त उपयुक्त था। महर्षि च्यवनके तपके कारण वह स्थान और भी पवित्र हो गया और उनके दर्शनोंके लिये दूर-दूरसे लोग आने लगे।

महर्षिको तप करते-करते एक वर्ष बीता और तब दूसरा। इस प्रकार बीतते-बीतते कई वर्ष बीत गये। वर्षाके बाद सर्दी आती और चली जाती, उनका अनुसरण करती हुई गरमी भी आती और चली जाती, परन्तु महर्षिकी समाधि उसी प्रकार लगी रहती। पक्षियोंने उनकी जटामें घोंसले बना लिये। सारे शरीर पर दीमक जम गयी। शरीरके स्थानपर एक मिट्टीका टीला-सा प्रतीत होने लगा। उनकी गर्दनमें साँप लिपट-लिपटकर अठखेलियाँ करने लगे, परन्तु च्यवन अपने तपमें अडिग रहे। उस टीलेसे केवल दो नेत्रोंका अपूर्व प्रकाश निकल रहा था, जिससे ऋषिके होनेका अनुमान किया जा सकता था। इस प्रकार तप करते-करते अनन्त काल बीत गया।

आर्यावर्तमें एक राजा थे, उनका नाम था महाराज शर्याति। वे बड़े प्रतापी थे। एक दिन वे शिकारकी इच्छासे अपनी बहुत सी सेना, मन्त्री, रानी, राजकुमारी आदिको साथ लेकर वनमें गये और जहाँ च्यवन ऋषि समाधिमें बैठे थे, उनके समीप जा पहुँचे। सबने वह डेरे डाल दिये। राजाने अपने सैनिकोंको महर्षि च्यवनके पास न जानेकी आज्ञा देते हुए कहा—'सैनिकों! यहाँ महर्षि तपस्यामें लीन हैं। ऐसा न हो कि हमलोगोंके कारण उनकी तपस्यामें जरा भी विघ्न हो। अतः हमलोगोंको दूर ही डेरा डालना चाहिये तथा उधर किसीको भी नहीं जाना चाहिए।'

राजकुमारी सुकन्या अपनी सखियोंके साथ वनमें घूम रही थी। उस टीलेके अंदरसे आते हुए जुगनूसे प्रकाशको देखकर बाल-चपलतावश उसने महर्षिकी आँखोंमें काँटे चुभो दिये। उनमेंसे खूनकी धारा बह चली। तब तो वह डरकर डेरेकी ओर भाग आयी। उसने यह बात किसीको नहीं बतायी! इधर महर्षिके कष्टजनित क्रोधके फलस्वरूप सैनिकों, हाथियों, घोड़ों-समेत सबका मल-मूत्र बन्द हो गया। सब बड़े दुःखी हो गये।

राजाने पता लगाया तो सारी बातें उनकी समझमें आ गयीं। उन्होंने जाकर बड़ी दीनताके साथ महर्षिकी पूजा की तथा अपनी भोली कन्याके द्वारा अज्ञानमें किये गये अपराधके लिये हाथ जोड़कर क्षमा माँगी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महर्षिने राजाको एक शर्तपर क्षमा करनेका वचन दिया। वह शर्त थी कि यदि शर्याति अपनी पुत्री सुकन्याका विवाह ऋषि के साथ कर दें तो वे (ऋषि) क्षमा कर सकते हैं। राजाने ऋषिकी शर्तको तुरन्त मान लिया। सुकन्याने भी इसको बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वीकार कर लिया और इस प्रकार सबकी सारी विपत्ति टल गयी। तदनन्तर राजाने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ऋषिके साथ सुकन्याका विधिवत् विवाह कर दिया। सुकन्या वहीं पतिकी सेवामें रह गयी।

सुकन्या भारतीय नारीका एक अपूर्व आदर्श थी। उसने पतिके बाह्य सौन्दर्यकी ओर ध्यान न देकर उसके अन्तःसौन्दर्यको देखा। पति उसके लिये परमात्मा-तुल्य था। उसकी सेवा ही उसके जीवनका एकमात्र व्रत था। वह दिन-रात पतिकी सेवामें लगी रहती। मुनिका स्वभाव कुछ कड़ा था; परंतु सती सुकन्या अपनी लगातार सेवासे उन्हें सदा संतुष्ट रखती थी। एक दिन प्रातःकाल वह नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पुष्करसे जलका कलश लिये हुए आ रही थी। उसके शरीर से यौवनकी आभा फूट रही थी। इतनेमें वहाँपर उसके सामने अश्विनीकुमार आकर उपस्थित हो गये। वे वहाँ उस निर्जन वनमें उस सुन्दरीको देख अत्यन्त विस्मित हुए, और बोले —'सुन्दरि ! इस निर्जन स्थानमें तुम्हारा आगमन कहाँसे हुआ ? तुम कोई देवी हो या गन्धर्वपत्नी ?' सुकन्याने अपना सारा हाल उनसे निवेदन कर दिया।

इसपर अश्विनीकुमार पुनः बोले 'देवि ! उस बुढ़े मरणासन्न ऋषिके पास क्यों अपने यौवनको व्यर्थ नष्ट कर रही हो। हमारे साथ चलो और जीवनका आनन्द प्राप्त करो।' सुकन्याने अपने सतीत्वके बलसे तुरंत उन्हें पहचानकर निवेदन किया—'अश्विनीकुमारो ! आप देवताओं-के वैद्य होकर यह क्या अनुचित वचन कह रहे हैं। स्त्रीके लिये पति ही परमात्मा है। वह चाहे बूढ़ा हो, दुराचारीहो, कोढ़ी हो या पतित हो, स्त्रीके लिये तो वही इस संसारमें सबसे बड़ा है।' अश्विनीकुमार सुकन्याके सतीत्वको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसके पति च्यवनको पुनः युवा बना देनेका उन्होंने वचन दिया।

अश्विनीकुमारोंने महर्षि च्यवनके साथ पुष्कर-तीर्थके पावन जलमें गोता लगाया और वे तीनों एक ही समान रूपरंगवाले युवक बनकर बाहर निकले। सुकन्याने सतीत्वके प्रभावसे अपने पतिदेवको पहचान लिया और उनके चरणमें अपना मस्तक झुकाया। महर्षि च्यवन अश्विनीकुमारोंपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—'हे स्वर्गके वैद्यो ! आपने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसके लिए मैं किन शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट करूँ। मैं आपको इन्द्रके साथ सोमरसका पान करवाऊँगा। आपको इन्द्रने जिस अधिकारसे वंचित कर रक्खा है, मैं पुनः वह अधिकार आपलोगोंको दिलवाकर रहूँगा।'

महर्षि च्यवनकी यौवनप्राप्तिका समाचार शर्यातिके कानोंतक जा पहुँचा और वे अपने जामाता और पुत्रीसे मिलने आये। राजाने महर्षिको पहचाना भी नहीं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महर्षिने राजासे एक विराट् यज्ञका आयोजन करनेके लिये कहा। राजाने भी महर्षिके आज्ञानुसार सोमयाग बड़े धूम-धामके साथ प्रारम्भ किया। इस यज्ञमें पौरोहित्य स्वयं महर्षि च्यवनने किया। समाप्तिके दिन सोमरसमें दूध मिला-मिलाकर सब देवोंके लिये पात्र भर-भरकर रख दिये। देवोंके लिये जो स्थान निर्धारित किये, उनमें अश्विनीकुमारोंको भी स्थान दिया गया था।

देवराज इन्द्र सब देवताओंके साथ सोमपान करनेके लिये यज्ञमें पधारे। अश्विनीकुमारोंके लिये भी सोमरससे भरे हुए पात्र देखकर इन्द्र च्यवनसे बोले--'महर्षे! यह आप क्या नवीन परिपाटी चला रहे हैं? इन अश्विनीकुमारोंको आपने देवताओंकी श्रेणीमें कैसे समझ लिया? देवता केवल वे ही हो सकते हैं जिनकी आत्मा ब्रह्मके चिन्तनसे शुद्ध हो गयी हो। ये दिन-रात रोगियोंकी चिकित्सामें लगे रहते हैं; अतः ये कभी भी देवताओंके साथ एक पंक्तिमें बैठकर सोमपान के अधिकारी नहीं हैं।' यह सुनकर महर्षि च्यवनने कहा--'देवराज! अध्यात्मविद्याका चिन्तन शरीरकी स्वस्थतापर ही तो आश्रित है। शरीरको ही सब धर्मोंका मूल बतलाया जाता है। सारे विश्व को रोगोंसे बचाकर ये लोग कितना बड़ा उपकार कर रहे हैं, फिर भी आप इनके कार्यको स्वार्थवश घृणित सिद्ध करने का दुःस्साहस करके इस विद्याका अपमान कर रहे हैं। आपका यह कार्य कदापि प्रशंसनीय नहीं है। मैं अवश्य इनको सोमपान करवाऊँगा। आपमें सामर्थ्य हो तो रोकिये।'

ऋषिके ये वचन सुनकर सारे यज्ञमण्डपमें सन्नाटा छा गया महर्षि च्यवनने अश्विनी कुमारोंकी ओर सोमरससे भरे हुए पात्र बढ़ाये। इन्द्र को अपने वज्रका बड़ा गर्व था। उन्होंने उसेही महर्षिके हाथ काटनेके लिये चलाना चाहा; परंतु महर्षिने अपने तपके प्रभावसे एक मद नामक भयंकर रूपधारी राक्षस उत्पन्न कर दिया। उसके उत्पन्न होते ही सभी देवताओंको अपने पेटमें धारण करना चाहा, परंतु शर्यातिके कहनेपर महर्षिने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। अश्विनीकुमारों को सोमरस पीने की अभिलाषा पूर्ण हुई महर्षिको उन्होंने अनेकानेक धन्यवाद दिया। इन्द्र भी महर्षिके तपके बलके सामने पराजित हो बड़े लज्जित हुए इस प्रकार संसारमें तपस्याके बलके गुणगानके साथ-ही-साथ पतिव्रताके पातिव्रत्यकी भी अमर कहानी गायी जाने लगी। सत्य है ऐसी ही पतिव्रताओंके कारण भारत आज भी संसारके सामने सगर्व मस्तक ऊँचाकर सकता है। धन्य हैं वे देवियाँ, जिन्होंने अपने उच्च आदर्शकी रक्षाके लिये भौतिक सुखको ठुकरा दिया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

साधना का महत्व

प्राचीन कालमें रथवीतिनामक एक बड़ा पराक्रमी राजा था। भारतकी पश्चिमोत्तर सीमापर गोमती (सिंधुकी सहायक गोमल) नदीके तटपर उसकी राजधानी थी। यह राजा बड़ा धार्मिक, विद्याप्रेमी और वेदव्यसनी था। उसकी रानी भी बड़ी विदुषी तथा पतिव्रता थी। राजा बड़े प्रेमसे अपनी प्रजापर शासन करता था। उसके शासनकालमें प्रजाको किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं था। यथासमय वर्षा होती थी और अन्न प्रचुर मात्रा में पैदा होता था।

एक समय उस राजाने सोमयज्ञ करनेका विचार किया। यज्ञकी पूरी तैयारी की गयी। बड़े-बड़े तपोधन ऋषियोंको ऋत्विक्‌का कार्य करनेके लिये निमन्त्रित किया गया। यज्ञके स्थानको खूब सजाया गया। ध्वजा, पताकाएँ चारों ओर हवामें फहराने लगीं। अति सुन्दर यज्ञमण्डप बनाया गया। उस मण्डपके बीचमें वेदीपर अग्निकी स्थापना की गयी और ऋत्विक् लोग यथाविधि उसमें वेदमंत्रोंके साथ आहुतिया प्रदान करने लगे। राजा और रानी दोनोंने रेशमी वस्त्र पहनकर यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की। जब इस प्रकार यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ हो गया और ऋत्विक् लोग अपना-अपना कार्य करनेमें व्यस्त हो गये। तब यज्ञमण्डप-में अत्यंत ब्रह्मतेजयुक्त दो अतिथि आये। उनमें एकके लम्बी सफेद दाढ़ी थी, जिससे यह विदित हो रहा था कि वह जीवनके तृतीय भागमें पदार्पण कर चुका है। दूसरेके मुख पर दाढ़ी-मूँछ अभी नहीं उत्पन्न हुई थी, जो उसकी युवावस्थाकी स्पष्ट सूचना दे रही थी। दोनोंके चेहरेपर अपूर्व तेज विराजमान था। उनके ललाटपर त्रिपुण्ड्र तथा हाथों में कमण्डलु सुशोभित थे। वृद्ध ऋषिका नाम था अर्चनाना और उस युवकका नाम था श्यावाश्व। यह युवक महर्षि अर्चनानाका ज्येष्ठ पुत्र था। ये दोनो क्रमशः महर्षि अत्रिके पुत्र और पौत्र थे। ये महर्षि अर्चनाना राजा रथवीतिके निमंत्रणपर यज्ञमें होताका कार्य करनेके लिये पधारे थे। इन्हें आनेमें कुछ विलम्ब हो गया था। राजाने उन पुत्रसहित महर्षिका खड़े होकर स्वागत किया तथा अन्य ऋत्विजोंने भी उनका अभिवादन किया। यज्ञमें वृत्त होकर महर्षिने होताका कार्य प्रारंभ कर दिया। वेदमंत्रोंकी सुमधुर ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। श्रोतागण इस अपूर्वदृश्यसे मुग्ध हो गये

यज्ञकी समाप्तिपर महर्षि अर्चनानाको दर्शकमण्डलीमें एक अपूर्व सुंदरी दिखायी पड़ी। वह थी राजा रथवीतिकी अविवाहिता कन्या मनोरमा उसे देखकर महर्षिने सोचा—'यदि राजा अपनी इस युवती कन्या का विवाह मेरे ज्येष्ठ पुत्र श्यावाश्व के साथ कर दे तो बड़ा अच्छा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हो। यह लड़की सर्वलक्षणसम्पन्न दिखायी पड़ती है। मेरा पुत्र इसके सर्वथा उपयुक्त है। परंतु मुझ दरिद्र ब्राह्मणका राजाके साथ सम्बन्ध अति कठिन प्रतीत होता है। राजा शायद ही मेरे इस प्रस्तावको माननेके लिये तैयार होगा। फिर भी महर्षिने साहसके साथ अपना प्रस्ताव राजासे कह सुनाया। राजा महर्षिके प्रस्तावको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा उन महर्षि अर्चनानाके पुत्रके कार्योंको यज्ञमें देख चुका था; अतः उसने महर्षिके प्रस्तावको अपना अहोभाग्य समझा। विनयपूर्वक राजाने महर्षिसे कहा—'महाराज ! मेरा यह बड़ा भारी अहोभाग्य होगा कि आपके विद्वान पुत्रके साथ मेरी पुत्रीका विवाह हो; परन्तु मैं इस कार्यको करनेसे पूर्व अपनी रानीसे भी, आप कहें तो, स्वीकृति ले लूँ। गृहस्थके कार्योंमें पत्नीकी अनुमति लेना अति आवश्यक तथा धर्मसंगत है। महर्षिने उसे तुरन्त इस बातकी अनुमति देते हुए कहा —'राजन् ! आपका यह मत सर्वथा न्यायोचित है, अतः आप अवश्य रानीसे भी इस विषयमें परामर्श कर लें।' राजा महर्षिकी आज्ञा पाकर अन्तःपुरमें गया और अपनी धर्मपत्नीसे बोला —'महर्षि अर्चनाना अत्रि ऋषिके पुत्र हैं और बड़े भारी वेदशास्त्र-पारंगत तथा कर्मकाण्डविशारद हैं। वे पुत्री मनोरमाको अपनी पुत्रवधू बनाना चाहते हैं। तुम्हारी इस विषयमें क्या सम्मति है? महर्षि अर्चनानाके पुत्रका पाण्डित्य हमलोगोंने यज्ञमें देख ही लिया है। वे एक महान् मन्त्रवेत्ता हैं, अतः वे सर्वथा मनोरमाके योग्य वर हैं।' रानीने राजाकी बातको बड़े ध्यानसे सुनी और कुछ सोचकर अपने पतिसे विनीत भावसे कहा —'पतिदेव ! आपका विचार सर्वथा स्तुत्य है। महर्षि अत्रिका वंश सर्वथा निष्कलंक और ज्ञानके लिये प्रसिद्ध है। श्यावश्व भी विद्याका सागर और सब लक्षणोंसे सम्पन्न युवक है; परंतु हमारे कुलके परम्परानुसार पुत्री मनोरमाका विवाह किसी ऋषिके ही साथ किया जा सकता है। श्यावाश्व यद्यपि मन्त्रवेत्ता होनेसे मुनि अवश्य है, परंतु वह अभी मन्त्रद्रष्टा नहीं है, अतः उसे ऋषि नहीं कहा जा सकता। ऋषि तथा मुनिमें बड़ा भारी अन्तर है। राजाको भी अपनी रानीकी युक्तिसंगत बात स्वीकार करनी पड़ी और वह निराश हो ऋषिके पास आकर बोला—'महर्षे ! मेरी रानीका यह कहना है कि श्यावाश्य अभी ऋषिपद को प्राप्त नहीं हुआ है, अतः मनोरमाका विवाह उसके साथ होना अभी सम्भव नहीं है। हमारी वंशकी यही सदाकी परिपाटी है कि ऋषिको ही अपनी पुत्री देना।' महर्षि अर्चनाना भी युक्तिसंगत बात सुनकर निरुत्तर हो गये।

वे अपनी बातका समर्थन नहीं कर सके; परंतु श्यावाश्व, जो कि पास ही खड़ा सारी बातें सुन रहा था, अपनी अयोग्यतापर अत्यन्त लज्जित हुआ। उसने तुरंत ऋषि पद प्राप्त करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञाकी और मरुद्गणोंको प्रसन्न करनेके लिये तपस्यार्थ चल दिया। जिस तपके प्रभावसे ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है, सूर्य सारे संसारको प्रकाश देता है और पृथ्वी सारे प्राणियोंको अपने ऊपर धारण करती है, उस तपका प्रभाव श्यावाश्वको विदित था, अतः उसने उसीका आश्रय ग्रहण कर ऋषिपद प्राप्त करनेका अटल निश्चय कर लिया। तपस्या

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते-करते श्यावाश्वको कई वर्ष बीत गये। ज्यों-ज्यों काल बीतता जाता था, त्यों-त्यों श्यावाश्वका तप भी कठिनसे कठिनतर होता जाता था। एक दिन मरुद्गणोंको प्रत्यक्ष दर्शन देना पड़ा। उनके शरीर सुवर्णके समान चमक रहे थे। कंधोंपर यज्ञोपवीत, कमरमें मेखला और हाथोंमें कमण्डलु थे। उनके गलेमें रुक्मकी मालायें सुशोभित थीं। श्यावाश्वने उन दिव्य पुरुषोंको पहचान लिया और लगा वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने—'हे मरुद्गणो! आज मेरा जीवन धन्य है, जो मुझे इन्हीं चर्मचक्षुओंसे आपलोगोंके दुर्लभ दर्शन मिल गये हैं। आप जिसपर दया कर देते हैं, उसके हृदयमें भगवान् वेद आकर उपस्थित हो जाता है और उसके मुखसे अनायास वैदिक ऋचाएँ निकलने लगती हैं। आपलोगोकी कृपा मनुष्यके लिये कल्पवृक्षके समान है जिसपर आपकी दयादृष्टि हो जाती है, उसकी मनोरथ लता पुष्प और फलसे युक्त हो जाती है।' मरुद्गणोंने उसकी स्तुतिसे प्रसन्न हो उसे रुक्ममाला प्रदान कर ऋषि पदपर आरूढ़ कर दिया।

श्यावाश्व भी अपने मनोरथकी पूर्तिपर फूला न समाता था। उसके सामने आज भी वही राजा रथवीतिकी पुत्री मनोरमाकी आकृति नाच रही थी। उसको प्राप्त करनेकी उसके हृदयमें प्रबल कामना थी, अतः वह तुरंत अपने दादा महर्षि अत्रिको अपने ऋषित्व-प्राप्तिका सुन्दर समाचार सुनानेके लिये चला। वहाँ जाकर उसने सारा वृत्तान्त अपने दादाको कह सुनाया। महर्षि अत्रि भी अपने पौत्रके ऋषि बन जानेसे अत्यन्त प्रसन्नचित्त थे। उन्होंने उसे राजा रथवीतिकी पुत्रीके साथ विवाह करनेकी आज्ञा प्रदान की। श्यावाश्व भी प्रफुल्लित हो वहाँसे चला, परंतु मार्ग में सोचने लगा—"मुझसे अपनीही प्रशंसा अपने मुखसे कैसे हो सकेगी। यदि किसी अन्यके द्वारा यह काम करवाया जाय तो ठीक रहे।" यह विचार करते-करते जब वह चला जा रहा था, तब उसे भगवती रात्रि मिल गयी और उसे ही अपना दूत बनाकर भेजना श्यावाश्वने उचित समझा और उनसे निवेदन किया—'भगवति! मेरी एक प्रार्थना आपको राजा रथवीतिके यहाँ जाकर निवेदन करनी पड़ेगी। आप राजा रथवीतिसे कहें कि श्यावाश्वने ऋषिपद प्राप्त कर लिया है, अतः अब उसके साथ आपको अपनी पुत्रीका विवाह कर देना चाहिये।

भगवती रात्रिने उसका दूत बनना स्वीकार कर, राजा रथवीतिसे जाकर सारी बातें कह दीं। राजा श्यावाश्वके ऋषित्वकी प्राप्तिका समाचार सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बड़ी धूमधामसे अपनी पुत्रीका विवाह ऋषि श्यावाश्वके साथ कर दिया जितनी तैयारी राजा रथवीतिने सोमयागकी भी नहीं की थी, उससे भी कहीं अधिक तैयारी आज इस यज्ञ-महोत्सवके लिये की गयी। सभी मित्रमण्डलको राजाने इस महोत्सवमें बुलाया। राज्यमें सर्वत्र हर्ष और उल्लास छा गया। अग्निवेदकी साक्षीसे दोनोंका विवाह सानन्द सम्पन्न हो गया। वेद-पिताके साथ वेदमाताके इस मिलनसे सारा लोक हर्षित हो उठा। विवाह-विधि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्पन्न होनेपर राजा रथवीतिने विनयपूर्वक श्यावाश्वसे कहा —'ऋषिप्रवर ! अपराधके लिये क्षमा करें ।' ऋषिने उत्तर दिया —'राजन् ! कौन-सा अपराध ? राजाने कहा—'महाराज । पहले महर्षि अर्चनानाके कहनेपर अपनी पुत्री आपको न देकर मैंने जो अपराध किया था, उसके लिये मैं आपसे क्षमा-याचना कर रहा था ।'

श्यावाश्व बोले—'राजन् ! आपने अपने कुलकी मर्यादाका पालन किया था । उसमें आपका क्या अपराध था । वास्तवमें उस समय मैं बिल्कुल अधिकारी नहीं था, फिर भी पिताने आपसे मेरे लिये जो आपकी पुत्रीकी प्रार्थना की वह सर्वथा अनुचित थी । आपने ही मुझे ऋषिपद प्राप्त करनेके लिये प्रेरणा दी, अतः राजन् ! आपका मेरे ऊपर बड़ा भारी उपकारका भार है ?'

राजा रथवीति तथा उसकी रानी—दोनों पुत्रीका विवाह कर संसारकी चिन्ताके भारसे मुक्त हो तपस्याके लिये वनमें चले गये और आश्रम बनाकर भगवानेकी आराधनामें अपना समय बिताने लगे ।

सत्य है—संसारमें साधनासे ही मनुष्य ज्ञान-विज्ञानकी चरम सीमापर पहुँच सकता है । उस साधनाका सर्वोत्तम समय छात्र-जीवन ही है । इस अवस्थामें ही जिन्होंने साधनाका महत्त्व नहीं समझा, उनसे किसी प्रकारकी उन्नतिकी आशा करना भूल है ।

—०—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संगति का फल

प्राचीन कालमें एक बड़े तपस्वी और वेद-वेदाङ्गमें पारंगत महर्षि थे, जिनका नाम सौभरि था। वे महर्षि कण्वके वंशज थे। उन्होंने गुरुमुखसे सभी वेदों और सभी शास्त्रोंको पढ़ा था और बड़े परिश्रमके साथ उनका मनन और चिन्तन किया था। शास्त्रोंके अध्ययनके फलस्वरूप युवावस्थामें पदार्पण करनेके पहले ही महर्षि सौभरिके चित्तमें भोग-सुखसे विरक्ति हो गयी और उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करते हुए ब्रह्मचिन्तन और तपस्या करनेकी प्रतिज्ञा की। जिस भोग-सुखमें सारे प्राणी मोहान्ध रहते हैं, उसी भोग-सुखको महर्षिने इस प्रकार त्याग दिया, जिस प्रकार सर्प काँचुलीका परित्याग कर देता है।

प्रकृतिका यह अटल नियम है कि यौवनका आगमन प्रत्येक प्राणीको कामान्ध बना देता है और विवेकको जल-बुदबुदके समान नष्ट कर डालता है; परंतु महर्षि सौभरिको यह प्राकृतिक नियम भी अपने पंजमें नहीं फँसा सका और उन्होंने जगतके बन्धनोंको कारागार समझकर परित्याग कर डाला। उनके माता-पिताने मोहवश उनको विवाह कर लेनेके लिये बहुत समझाया; परंतु उन्होंने किसीकी एक नहीं मानी, वे अपने व्रतपर अडिग रहे। संसार उनको संतप्त बालुकाका ढेर प्रतीत हो रहा था और वे उससे अत्यन्त भयभीत होकर दूर भागना चाहते थे। वे किसी ऐसे सुखकी खोजमें निकलना चाहते थे, जिसमें कभी किसी प्रकारसे भी कमी न आये। अन्तमें वे पिताका आदेश न मानकर घरसे निकल पड़े और घूमते-घूमते यमुना-तटपर पहुँचे।

यमुना कल-कल करती हुई प्रवाहित हो रही थी। उसके तटपर सघन तमालके वृक्ष बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। पक्षी निर्भय होकर कलरव कर रहे थे। पशु स्वच्छन्द होकर वहाँपर विचर रहे थे। कोई भी सबल प्राणी अपनेसे निर्बलको सतानेकी चेष्टा नहीं करता था। यमुनातटके वृक्षोंका वह सुन्दर दृश्य देखकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर वहीं पर अपना आश्रम बनाकर तपस्या करनेका विचार करने लगे। इतनेमें ही सायंकाल शान्तिका अखण्ड राज्य लिये हुए आ पहुँचा। महर्षिने वहाँपर अपूर्व शान्तिका अनुभव किया। वे वहींपर कुटी बनाकर रहने लगे।

महर्षिके चित्तमें तपस्याके प्रति अत्यन्त प्रेम तो था ही, इसलिये वह प्रेम ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों अधिक-अधिक बढ़ता गया और अन्तमें महर्षि कुटीका भी परित्याग कर यमुनाके जलमें ही रात-दिन रहने लगे। उनकी तपस्या चरम सीमापर पहुँच गयी। क्या वर्षा, क्या शीत--सभीमें महर्षि यमुनाके जलमें ही समाधिमग्न रहने लगे। वर्षाकालमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नदीके जलका वेग बढ़ता था; परंतु महर्षि तनिक-भी विचलित हुए बिना अपनी तपस्यामें लीन रहते। शीतकालमें यमुनाका जल इतना शीतल हो जाता कि कोई उसमें प्रवेश करनेका साहस नहीं करता; परंतु महर्षिके शरीरमें इस शीतलताका कोई भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता था। वे अपनी जल-तपस्यामें अविचल भावसे लीन रहे। उनको विश्वकी कोई भी शक्ति या भय विचलित नहीं कर सकते थे। उनका यह क्रम वर्षों ही चलता रहा। यहाँतक कि ऋषिके जीवनमें बुढ़ापेके चिह्न प्रकट होने लगे। जिस समय उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की थी, उस समय उनका यौवनका समय था और उनके शरीरमें स्फूर्तिका अपार वेग था; परंतु आज उनका शरीर जरा-जीर्ण होने लग गया है। सब केश सफेद हो गये हैं। अंग-अंग बुढ़ापेके आगमनसे शिथिल हो गये हैं। फिर भी इतनी कठोर तपस्या। जो भी इस प्रकार उनकी अखण्ड तपस्याको देखता, उसीके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता था।

इस प्रकार कठिन तपस्या करके ऋषि अपने जीवनके अन्तिम भागको सुखमय बनाये यह कठोर भाग्यको सहन नहीं हुआ और उसने महर्षिके चित्तपर अज्ञानका पर्दा डालना प्रारम्भ कर दिया। घटना यह हुई कि जब महर्षि सौभरि यमुनाके जलमें समाधि लगाते थे, वहाँ एक मत्स्यराज अपनी पत्नीके साथ जल-विहार किया करता था। दोनों पति-पत्नी सांसारिक सुखका भोग किया करते थे। साथ ही उनके बच्चे भी बड़े सुन्दर और आकर्षक थे। वे सब मानो मिलकर एक स्वर्गका सुख भोग रहे थे। एक दिन जलके भोतर ही उनकी समाधि भंग हो गयी। तब उन्होंने यह सब देखा। आँखोंके तनिकसे कुसङ्गका प्रभाव पड़ा। महर्षि को अपना जीवन नीरस प्रतीत होने लगा और उस मत्स्य-परिवारका जीवन बड़ा सुखद। महर्षिको इतने दिनोंका दीर्घ और कठोर तप एकदम व्यर्थ प्रतीत होने लगा। वे अपने इस एकाकी जीवनको धिक्कारने लगे। संग अपना फल करनेसे कभी चूकता नहीं। महर्षि भी मत्स्यराजके पारिवारिक जीवनको सुखमय समझकर स्वयं भी गृहस्थ बननेकी सोचने लगे अपना तपस्वी जीवन उनको भयानक और दुःखद प्रतीत होने लगा।

महर्षिने तपस्या द्वारा अपने शरीरको तो अत्यन्त सुखाडाला, परंतु जिस वस्तुको सुखा डालना चाहिये था। उसे वस्तुतः वे नहीं सुखा सके थे। वह वस्तु है मनकी सूक्ष्मवासना। इसको जबतक मनुष्य नष्ट नहीं कर डालता, तबतक वह सच्चा वैराग्य नहीं प्राप्त कर सकता। महर्षि वास्तवमें असली तत्त्वको नहीं समझे थे और केवल बाहरी त्याग तथा शरीर-कष्टको ही सच्चे सुखका साधन समझ बैठे थे। ज्ञान सच्चा होना चाहिये, जिससे जगत्‌की अनित्यता तथा दुःखमयताके बोध के साथ ही उसकी असत्ताका ज्ञान हो जाय। तभी पूर्ण वैराग्य होता है। केवल शास्त्र-ज्ञानसे उत्पन्न वैराग्य और बाहरी त्याग कभी नित्य नहीं हो सकता। महर्षि सौभरिका वैराग्यत्याग केवल शास्त्र-ज्ञानसे उत्पन्न था, अतः वह बालूकी भीतके समान अवसर आनेपर ढह गया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसीलिये वैराग्यको छोड़कर महर्षि सौभरि सँसारके सुखोंकी ओर आकृष्ट हो गये और अपने विवाहकी तैयारी में लग गये। अब वे विवाहकी चिन्तासे व्याकुल हो गये और स्त्रीकी खोजमें भटकने लगे। उन्हें कामने पागल कर दिया। वे कामिनीको ही एकमात्र अपने जीवनका परम लाभ मान बैठे; परंतु स्त्रीका मिलना कोई साधारण काम थोड़ा ही है। खास तौरसे उस बूढ़े जराजीर्ण पुरुष को स्त्री मिलना नितान्त कठिन था; परंतु महर्षि फिर भी निराश नहीं हुए और प्रयत्न करते रहे।

सप्तसिन्धु प्रदेशके पश्चिम भागमें सुवास्तु (स्वात) नदीके तट-प्रदेशके शासक राजा मान्धाता (त्रसद्दस्यु) के यहाँ महर्षि पहुँचे। राजा मान्धाताके प्रतापसे सप्तसिन्धुके सारे राजा लोग काँपते थे। उनकी दुर्दान्त शक्तिके सामने सभी प्रतिपक्षी पराजय स्वीकार करते थे। इन राजाके पचास पुत्रियाँ थीं। महर्षि को यह बात किसीसे विदित हो गयी। वे तुरंत कामार्त होकर राजा मान्धाता की सभामें उपस्थित हुए। राजाने महर्षिका बड़ा सत्कार किया और मधुपर्कसे उनका पूजन किया। महर्षिसे वहाँ पधारनेका कारण पूछनेपर उन्होंने तुरंत राजाको अपना मनोरथ कह सुनाया! महर्षि राजासे बोले--'राजन्! अपनी पुत्रियोंमेंसे एक पुत्रीका मेरे साथ विवाह कर दें तो बड़ी दया हो। यह वचन राजाको वज्रके समान भयंकर प्रतीत हुआ। राजाने ध्यानसे महर्षिके शरीरको देखा। जराजीर्ण शरीर तथा सभी श्वेत केश देखकर राजा बड़े भारी असमंजसमें पड़े। न तो वे भयके कारण उनके वचनको टालनेका साहस ही कर सके और न उस वृद्धके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करनेका ही साहस कर सके। राजाने विनीत भावसे ऋषिसे कहा--'महराजा! यह तो श्रीमान् अच्छी तरह जानते ही हैं कि हम क्षत्रियलोग अपनी कन्याओंका विवाह स्वयंवरके बिना नहीं कर सकते। यदि मेरी लड़कियोंमेंसे कोई आपको वरण करनेके लिये राजी हो तो मुझे आपके साथ उसका विवाह करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। आप मेरे साथ अन्तःपुरमें चलिये।' ऋषि राजाकी इस बातपर सहमत हो गये और राजाके साथ अन्तःपुरकी ओर चलने लगे। चलते-चलते महर्षिने सोचा कि 'मेरे इस जराजीर्ण शरीरको देखकर कौन लड़की मेरे साथ विवाह करनेके लिये तैयार होगी।' ऋषिके पास तपस्याका अतुल बल था, अतः उन्होंने तुरंत सूर्यके समान तेजस्वी और कामदेवको भी लजानेवाले युवकका रूप वना लिया। राजाके साथ महर्षि ज्यों ही अन्तःपुरमें पहुँचे त्यों ही सभी राजकुमारियाँ उनके अपूर्व सौन्दर्यको देखकर उनकी ओर आकृष्ट हो गयीं। राजाने जाकर अपनी पुत्रियोंसे ऋषिका प्रस्ताव कह सुनाया। सभी राजकुमारियोंने उनके साथ विवाह करनेके लिये सहर्ष स्वीकृति दे दी। राजाने अपनी पचासों कन्याओंका विवाह महर्षिसे कर दिया और दहेजमें खूब धन-दौलत दिया। हजारों गाय, बैल; घोड़े और दास-दासियोंको पाकर ऋषि राज-कुमारियोंके साथ अपने आश्रमकी ओर चल दिये। महर्षिके हर्षका कोई पार नहीं था। देवराज इन्द्र महर्षि सौभरिको मार्गमें मिल गये। महर्षिने प्रेमपुलकित होकर इन्द्रकी स्तुति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को। इन्द्र स्तुतिसे प्रसन्न होकर बोले--'महर्षे ! मैं तुमपर बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो वही वरदान मुझसे माँग लो।' महर्षिने इन्द्रसे कहा–'देवराज ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे अनन्त यौवन प्रदान करनेका दया करें और मुझे ऐसी शक्ति देनेकी कृपा करें कि मैं एक ही साथ इन पचासों युवतियोंके साथ विहार कर सकूँ। विश्वकर्मा मुझे एक बड़ा सुन्दर महल बना दें, जिसके चारों ओर एक सुन्दर बगीचा लगा हो। बगीचे में कल्पवृक्षोंके सघन कुंज हों, जिनमें मैं क्रीड़ा कर सकूँ। आपकी दयासे मेरा यह गृहस्थ-जीवन कभी समाप्त न हो। मैं सदा सुखपूर्वक इसका उपभोग करता रहूँ।' इन्द्र 'तथास्तु' कहकर चले गये। महर्षि भी प्रसन्नचित्त हो अपने स्थानपर पहुँचे।

महर्षिने यद्यपि मोह और अविवेकवश यह सब प्रपन्च रच तो डाला; परन्तु सांसारिक बन्धनमें फँसनेपर उन्हें इस जीवनके वास्तविक दुःखोंका ज्ञान हुआ; क्योंकि किसी चीजको प्राप्त करनेकी आशामें जो आनन्द आता है, वह आनन्द उस चीजको पा लेनेपर नहीं रहता। महर्षिको भी अबतक जो गृहस्थ-जीवनके प्राप्त करनेकी आशामें अपूर्व आनन्द आ रहा था वह गृहस्थ-जीवनमें फँसते ही दुःखमें परिवर्तित हो गया। महर्षि सोचने लगे– 'क्या यही सुखद जीवन है जिसके लिये मैंने अपनी अनन्त साधनाको नष्ट कर डाला ?' घर अब महर्षिको खानेके लिये दौड़ने लगा। अब उनको सच्चा वैराग्य हो गया और वे सब स्त्रियोंको छोड़ वनकी ओर अनन्त सुखकी खोजमें निकल पड़े। स्त्रियाँ भी पतिके मार्गका अनुसरण करती हुई उस परमपिता परमात्माकी खोजमें निकल पड़ीं।

महर्षि सौभरि इस प्रकार परम तत्त्वकी खोज करते हुए परम पदको प्राप्त हो गये।

सत्य है--संगतिका फल अवश्य होता है। बुरी संगति करनेवालेको बुरा फल और अच्छी संगति करने-वालेको अच्छा फल अवश्य मिलता है। बुरी संगतिके प्रभावमें बड़े-बड़े तपस्वी और ऋषि-मुनि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। साधारण मनुष्योंका तो कहना ही क्या है। कीचड़के पास बैठनेपर वस्त्र गंदे होते ही हैं। अतः छात्रोंको कभी भूलकर भी बुरी संगति नहीं करनी चाहिये।

—०—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तपस्याका प्रभाव

एक पवित्र आश्रममें एक ऋषि रहा करते थे। उनका नाम था अत्रि। वे बड़े भारी तपस्वी और वेदवेदांगके पारद्रष्टा विद्वान् थे। उनके आश्रममें एक अपूर्व शान्ति विराजती थी। छात्रवृन्दके द्वारा उच्चारण किये वेद मन्त्रोंकी सुमधुर ध्वनिसे वह आश्रम सर्वदा गूँजता रहता था। कालक्रमसे महर्षिको एक पुत्री हुई। महर्षिने उसका नाम रक्खा अपाला। लड़की बड़ी प्रखर बुद्धिवाली थी। महर्षिका उसपर अपार स्नेह था। परंतु भाग्यकी विडम्बनाको कोई जान नहीं सकता है। फूलमें भी तो काँटे पैदा हो जाते हैं। भाग्य-वश अपालाके शरीरपर सफेद कुष्ठके छोटे-छोटे दाग हो गये। महर्षि अत्रि सुवर्णके समान कान्तिवाले अपनी पुत्रीके सुन्दर शरीरपर इन श्वित्रके दागोंको देखकर बड़े चिन्तित रहने लगे। महर्षि ने उनकी चिकित्साके लिये अनेक औषधियोंका प्रयोग किया; परंतु ज्यों-ज्यों उनकी चिकित्साके उपाय किये, त्यों-त्यों वे सफेद दाग अधिक-अधिक बढ़ने लगे। ऋषिने भाग्य-विधानके आगे अपनी पराजय स्वीकार कर उसकी चिकित्सा बंद कर दी। अपने अन्य शिष्योंके साथ उसे भी शास्त्रका अध्ययन कराने लगे। बालिका भी इतनी बुद्धिमती तथा सुमधुर कण्ठ-वाली थी कि स्वल्प समयमें ही सारे शास्त्रोंको कण्ठस्थ कर कोकिलके समान सुरीले कण्ठसे उच्चारण करने लगी।

महर्षि अपनी पुत्रीकी इस विद्वत्तासे बड़े प्रसन्न थे। पुत्री भी सब शास्त्रोंमें निपुण ही थी और विद्याके बलसे बड़े-बड़े विद्वानोंको शास्त्रार्थ में पराजित कर देती थी। समय पाकर अपालाके शरीरमें यौवनके चिह्न प्रकट होने लगे और ऋषिको अपनी पुत्रीके योग्य वरकी प्राप्तिकी चिन्ता हुई। महर्षि अत्रिने योग्य वरकी खोज प्रारम्भ की। खोज करते-करते उनको एक कृशाश्व नामका ऋषिकुमार अपनी पुत्रीके सर्वथा उपयुक्त वर प्रतीत हुआ। यह ऋषिकुमार भी पूर्ण युवा था। साथही-साथ वेदवेदांगादि सभी शास्त्रों में निष्णात था। ऋषिकुमारका अपालाके साथ ज्यों ही साक्षात्कार हुआ, त्यों ही दोनों प्रेमके पाशमें आबद्ध हो गये। युवावस्थामें विवेकशक्ति प्रायः लुप्त-सी हो जाती है, अतः उस ऋषिकुमारने अपालाके उस चर्मरोगकी ओर ध्यान नहीं दिया। उससे विवाहके लिये पूर्ण सहमत देखकर महर्षि अत्रिने उस ऋषिकुमार कृशाश्वके साथ अपालाका विवाह अग्निकी साक्षी से सम्पन्न कर दिया। महर्षि अपनी पुत्रीको योग्य वरको देकर अत्यंत प्रसन्न थे। अपाला भी योग्य पतिको पाकर अपने भाग्यकी प्रशंसा करती थी। अपाला अपने पतिके साथ श्वसुरगृहमें चली गयी। वहाँपर वह अपने शील, पातिव्रत्य तथा विनयसे सास तथा ससुरकी स्नेहभाजन बन गयी। सुखपूर्वक अपना गृहकार्य सम्पन्न करती हुई सभी को प्रसन्न रखने लगी। पतिदेवभी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उससे अत्यन्त प्रेम करते थे। परंतु दैवकी दुर्लिपि किसी के मिटानेपर भी मिट नहीं सकती। एक दिन पतिदेवने उसके शरीरके उन सफेद कुष्ठके चिह्नोंको देख लिया। उनका प्रेमका प्रवाह अचानक सूख गया और वे उससे प्रेमके स्थानपर घृणा करने लगे। पतिदेवको इस प्रकार अपनेसे विरक्त देखकर एक दिन अपालाने विनीतभावसे निवेदन किया--'पतिदेव ! आप मुझसे अत्यन्त प्रेम करते थे। आज अचानक आप मुझसे इतने विरक्त क्यों दिखायी पड़ते हैं? क्या प्रेमपर वासनाकी विजय हो गयी है? आप मेरी इतनी अवहेलना क्यों कर रहे हैं?' इस प्रकार अपालाने अनेक प्रकारसे पतिको समझानेका प्रयत्न किया। पर जब उसे यह जान पड़ा कि पति उसे रखनेको तैयार नहीं हैं, तब वह तुरंत उस आश्रमको छोड़कर अपने पिताके आश्रमकी ओर चल पड़ी। उसके हृदयमें एक महान वेदना व्याप्त हो रही थी। स्त्री-जातिकी विवशताकी मानो वह साक्षात् प्रतिमूर्ति थी।

पिताके आश्रममें आकर भी उसके हृदयमें एक बड़ा भारी संघर्ष चल रहा था। वह जीवनसे ऊब चुकी थी और जीवनलीलाको किसी-न-किसी उपायसे समाप्त करना चाहती थी। अपने जीवनसे उसे बिल्कुल घृणा हो गयी थी। वह अत्यंत चिन्ताके सागरमें गोते लगा रही थी। सहसा विचार करते-करते उसके हृदयमें एक प्रकाशकी किरण चमक उठी। उसने आध्यात्मिक बलसे पुनः दिव्य तेज प्राप्त करनेकी ठान ली। उस सफेद कुष्ठको तपस्या बलसे समूल नष्ट करनेका दृढ़ निश्चय कर डाला। शारीरिक दुर्बलताओंको दूर करनेका तथा पापकी कलुषताको धो डालनेका एकमात्र उपाय है--तपस्या। तपस्याके बलसे मनुष्य असाध्य कामोंको भी साध्य बना लेता है। इसके प्रभावसे शरीर पुनः सुवर्णके समान चमकवाला बन सकता है उसी तपस्याको उसने अपने उद्धारका एकमात्र साधन समझा और वह उसीमें लग गयी।

देवराज इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये वह कुशासनपर आसन लगाकर बैठ गयी और घोर तप करने लगी। इस प्रकार कई वर्षोंतक वह इस कार्यमें लगी रही। प्रातःकालका सूर्य अपना बालातप बिखेरता आता; मध्याह्नमें प्रचण्ड किरणोंसे संसारको संतप्त करता हुआ वही सूर्यदेव नीचेकी ओर ढल जाता और सायंकाल ढलता-ढलता अस्ताचलकी ओर ढल चला जाता। दूसरे दिन भी यही क्रम चलता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया; परंतु देवराज इन्द्र उसकी प्रार्थनापर नहीं पसीजे। फिर भी उसने अपने उत्साहको मंद नहीं पड़ने दिया और उसी प्रकार अपने कार्यमें लगी रही। दृढ़ निश्चयवाले मनुष्यको कोई भी बाधा अपने कार्यसे रोक नहीं सकती। अपालाने अब अपने कार्यको सिद्ध करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था, अतः वह इन्द्रदेवकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले तपसे निवृत्त नहीं हुई। अन्तमें उसने विचार किया --'सोमरसके पान करानेसे इन्द्रदेव प्रसन्न होते हैं, अतः उन्हें सोमरसका पान कराना चाहिये।' परंतु सोमलताका उसे बिल्कुल ज्ञान नहीं था, अतः किस प्रकार सोम-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रस इन्द्रदेवको पिलाया जाय--यह उसके लिये एक जबरदस्त समस्या बन गयी; परंतु वह निराश नहीं हुई। सोमलताकी खोज उसने जारी रक्खी। एक रातको वह एक समीपकी नदीमें जलका कलश लानेके लिये गयी। चन्द्रमा पूर्णतया चमक रहा था। जब वह जलका कलश लेकर आश्रमकी ओर वापस लौट रही थी, तब उसे जंगलमें एक लता दिखायी पड़ी। उस लताको देखकर उसने समझ लिया कि निश्चय ही लक्षणोंसे यह सोमलता प्रतीत होती है।

उसकी परीक्षा करनेके लिये ज्यों ही एक पत्ता तोड़कर अपालाने अपने मुह में डाला, त्यों ही इन्द्रदेव तुरंत उसके सामने आकर खड़े हो गये और उससे बोले--'देवि! तुमने तो इन्द्रको सोमरसका पान कराकर फिर सोमरस-पानका निश्चय कर रक्खा था। यह तुम क्या कर रही हो? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञाको भूल गयी?' अपालाने तुरंत विनीत भावसे इन्द्रदेवको प्रणाम किया और उससे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया--'देव! मैं अपनी प्रतिज्ञाको कैसे भूल सकती हूँ? मैं केवल आपको सोमरस पिलानेके लिये लताकी परीक्षा कर रही थी, न कि सोमरसका पान कर रही थी।' तब इन्द्रदेवको उसने सोमरसका पान करवाकर खूब तृप्त कर दिया। इंद्रदेव तृप्त होकर उससे बोले--'देवि! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो वर मांगो।'

अपालाने कहा--'महाराज! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे पिताकी खोपड़ीमें बाल नहीं हैं, अतः वे पुनः उग आयें।'

इन्द्रने कहा--'तथास्तु! और वरदान माँग।'

अपालाने हाथ जोड़कर कहा--'महाराज! मेरे पिताके ऊसर खेतोंमें पुनः फल उत्पन्न होने लगे।'

इंद्रने उसकी प्रार्थना स्वीकृत कर पुनः कहा--'देवी! एक वरदान और माँग।'

अपालाने प्रार्थना की--'महाराज। मेरे शरीरपर जो ये सफेद कुष्ठके दाग हैं, वे तुरंत मिट जायें।'

इंद्रने उसकी इस प्रार्थनाको भी स्वीकार करके उसके शरीरको दिव्य कांतियुक्त और सूर्यके समान तेजवाला बनाकर उसे एक अपूर्व सुन्दरी बना दिया। अपाला भी तपके प्रभावसे दिव्य शरीर पाकर पुनः अपने पतिके आश्रममें चली गयी। कुशाश्व भी अपनी पत्नीके दिव्य शरीरको देखकर बड़ा प्रसन्न हुए और अपने द्वारा किये गये अपमानका स्मरणकर बहुत ही लज्जित हुए।

धन्य है, ऐसी नारियोंको जो अपनी तपस्याके प्रभावसे असाध्य कामको भी सिद्ध करके दिखला देती हैं। ऐसी नारियोंके गौरवसे ही भारत आज भी विश्वके सामने सगर्व मस्तक उन्नत किये खडा है। ऐसी आदर्श नारियाँ ही हमारी आधुनिक माताओंके लिए एक प्रकाशकी किरण बनी हुई हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यज्ञका प्रभाव

सप्तसिन्धुप्रदेशके अंदर कुरुदेशमें एक चक्र नामके ऋषि रहा करते थे। उनके आश्रममें देश-देशान्तरसे विद्यार्थी वेदोंका अध्ययन करनेके लिये आया करते थे। महर्षि भी बड़ी प्रसन्नताके साथ विद्यार्थियोंको वेदोंकी शिक्षा दिया करते थे। सामगानसे सारा आश्रम गुंजता रहता था। महर्षिने यज्ञोंके द्वारा देवताओंका ऋण तथा वेदाध्ययनसे ऋषियों-का ऋण तो चुका दिया, परंतु कोई संतान न होनेके कारण वे पितृ-ऋण नहीं चुका सके थे। इसका महर्षिके चित्तमें बड़ा खेद था। महर्षिकी जवानी ढलने लगी; परंतु फिर भी उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। महर्षिने पुत्रप्राप्तिके लिये भगवानसे पुकार की और भगवान्‌ने उनकी प्रार्थना सुनकर एक पुत्र प्रदान कर दिया। पुत्रके जन्मसे महर्षिके हर्षका कोई सीमा नहीं रही। बालकका जन्म-संस्कार ऋषिने विधि-विधानसे किया। महर्षिने उसका नाम उषस्ति रक्खा।

'योग्य पिताकी संतान भी योग्य ही हुआ करती है' इस नियमके अनुसार वह बालक भी अत्यंत मेधावी निकला। उसने अपने पितासे ही उपनयन-संस्कार करवाकर वेदोंकी शिक्षा प्रारम्भ की। बड़े प्रेमसे बालक संहिताओंका अध्ययन करने लगा। बालकका स्वर इतना मीठा था कि उसके मुखसे वेद-मन्त्रोंका उच्चारण सुनकर ऋषिका चित्त प्रसन्न होता था और श्रोतागण उस स्वर-माधुरीसे विस्मित हो जाया करते थे। बालकने सारी विद्याओंको पढ़ लिया। शास्त्रोंके ज्ञानके प्रकाशसे उसका हृदय प्रकाशित हो गया। विद्याके कारण उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गयी।

उषस्ति अब पूरा जवान हो चुका था तथा शास्त्रोंमें पारंगत हो गया था, इसलिये पिताने उसका विवाह एक विदुषी और सब लक्षणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण बालिकाके साथ कर दिया। उस लड़कीका नाम था आटिकी। विवाहके पश्चात् उषस्तिने भी पिताकी ही भाँति कुरुदेशमें ही एक पाठशाला स्थापित कर ली और छात्रोंको वेदोंकी शिक्षा देने लगा। उसकी विद्वत्ताकी ख्याति सब जगह फैल चुकी थी, अतः दूर-दूरको विद्यार्थी उसके पास पढ़नेके लिये आने लगे। वह भी विद्यार्थियोंको शास्त्रोंकी शिक्षा देता हुआ अपना समय यापन करने लगा।

कुरुदेश बड़ा धन-धान्यसे सम्पन्न देश था। वहाँपर प्रजाको सब प्रकारका सुख था। इंद्रदेव समयपर यथेष्ट वर्षा किया करते थे। भूमि भी वहाँकी अत्यन्त उपजाऊ थी। इस-लिये प्रजाको अन्नकी कोई कमी नहीं थी। राजा न्यायपूर्वक प्रजाका पालन किया करता था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कोई भी दुखी नहीं था। सब प्रजा सुखचैनसे अपने दिन बिता रही थी; परन्तु एक समय ऐसा आया कि उस देशपर विधाताकी क्रूर दृष्टि पड़ गयी। इंद्रदेवका ऐसा कोप हुआ कि लगातार बारह वर्षतक वर्षा नहीं हुई। भूमिमें अन्न पैदा होना बंद हो गया। सारे जलाशयोंका पानी सूख गया। सभी जीवजन्तु भूखे और प्यासे मरने लगे। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। लोग भूखके मारे वृक्षोंकी छाल खाने लगे। फिर भी क्षुधाकी तृप्ति न होनेपर लोग अपना-अपना स्थान छोड़कर निकल पड़े। सारा-का-सारा कुरुप्रदेश सूना हो गया। जो कुरुप्रदेश समृद्ध था, वही अब श्मशानके समान भयंकर प्रतीत होने लगा।

उषस्ति भी अपनी पत्नी आटिकीके साथ वहाँसे अन्नकी खोजमें निकल पड़ा। दोनों पति-पत्नी भूखसे व्याकुल थे, इसलिये उनके पैर नहीं उठते थे; परंतु फिर भी अन्नकी खोजमें भटकते फिरते थे। अंतमें सायंकाल वे एक ग्राममें पहुँचे, वहाँ केवल महावत (हाथी पालने-वाले) ही रहा करते थे। ऋषि एक महावतके घरपर पहुँचे। ब्राह्मणको अपने घरपर आया हुआ देखकर महावतने उसका स्वागत किया। ब्राह्मण कई दिनोंका भूखा था। भूख इतना सता रही थी कि ब्राह्मणने तुरंत महावतसे कहा—महाशय ! मुझे बड़े जोरसे भूख सता रही है। भोजन किये मुझे आज कई दिन हो गये हैं। क्या आप मुझे कुछ भोजन दे सकते हैं?' 'महाराज ! मैं इस बर्तनमें जो उड़द खा रहा हूँ, इन जूँठे उड़दोंके सिवा मेरे पास और कुछ नहीं है, जो आपको दूँ और ये उड़द मेरे जूठे हैं। अतः ये आपके बिल्कुल ही योग्य नहीं हैं।' —महावतने नम्रतापूर्वक कहा। आगकी ज्वाला भयंकर होती है; परंतु पेटकी अग्नि उससे भी कितनी भयंकर होती है। यह केवल भुक्तभोगी ही जानता है। अग्निसे बचनेका कोई उपाय किया भी जा सकता है, पर इस शरीरके अंदर जलनेवाली आगसे बचनेका कोई उपाय ही नहीं है। ऋषिने गिड़गिड़ाकर महावतसे कहा—'भाई ! भूखसे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं, इसलिये ये जूँठे उड़द देकर ही मेरे प्राण बचाकर तुम महान् पुण्यके भागी बनो।' महावत विनयके साथ बोला—महाराज। आप-जैसे विद्वान्को जूँठा अन्न खिलाकर मैं पापका भागी बनकर नरकगामी नहीं होना चाहता।'भूखेको अन्न देनेमें धर्म ही होता है। मेरे प्राण निकल रहे हैं, अतः मेरे प्राण बचानेसे तुम्हें बड़ा भारी पुण्य होगा। विपत्तिके समय जूँठा अन्न खानेमें भी कोई दोष नहीं होता है। सभी शास्त्रकार इसकी अनुमति प्रदान करते हैं। प्राणकी रक्षा जिस किसी तरह भी करना मनुष्यका परम कर्तव्य है।' —उषस्तिने कहा। महावतने तुरंत वे उड़द दो भागोंमें बाँटकर ऋषि तथा उसकी स्त्रीको दे दिये।

महर्षिने अपने हिस्सेके उड़द खा लिये, परंतु ऋषिकी स्त्री बड़ी धर्मशीला थी। अतः उसने उन जूँठे उड़दोंको खाना उचित नहीं समझा। उसने उनको पल्लेमें बाँध लिया। महर्षिके उड़द खा लेनेपर महावतने ऋषिसे जल पीनेकी प्रार्थना की। महर्षिने महावतकी प्रार्थनाको अस्वीकार करते हुए कहा— भाई ! तुम्हारा जल जूँठा है, इसलिये मुझ-जैसा सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शास्त्रोंका जाननेवाला मनुष्य उसे कैसे पी सकता है ?' महर्षिके इस प्रकारके बचन सुनकर महावतको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने विचार किया कि जूँठे उड़द खा जानेवाला व्यक्ति मेरे जलको जूँठा और अस्पृश्य बतलाता है। यह एक बड़ी विचित्र बात है। उसने हाथ जोड़कर महर्षिसे प्रश्न किया--'महाराज आपने मेरे जूँठे उड़द तो खा लिये और मुझसे स्पर्श किये हुए जलको अस्पृश्य बतला रहे हैं। यह क्या बात है ? आप-जैसे विद्वान्‌के मुखसे एसी विरोधी बात सुनकर तो मुझे अत्यंत आश्चर्य हो रहा है।' महावतके इस प्रश्नपर महर्षि उर्षास्ति मुसकुराये और बोले--'भाई' ! प्राणोंकी रक्षा करना मनुष्यका सबसे बड़ा धर्म है। जिस किसी भी तरह उनको बचाना ही चाहिये। मुझे अन्यत्र अन्न मिल नहीं रहा था, अतः जूँठे उड़द भी खानेमें कोई दोष नहीं था। यह आपद्धर्म है। परंतु जल तो मुझे कहीं अन्यत्र भी मिल सकता है। फिर मैं व्यर्थ क्यों अस्पृश्य जल पीकर अपने धर्मको नष्ट करूँ।' महावत महर्षिके युक्तिसंगत उत्तरको पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। महर्षि भी अपनी स्त्रीसहित वहाँसे चल दिये। मार्गमें जल पीकर महर्षिने अपनी प्यासको शान्त किया। दोनों प्राणी किसी जलाशयके किनारेपर ही रात्रिमें सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही महर्षि नित्य-कृत्यसे निवृत्त हो पुनः अपनी यात्रापर आगे बढ़े। चलते-चलते सायंकाल हो गया; परंतु आज भी महर्षिको कहीं भोजन नहीं मिला। महर्षिका शरीर भूखसे शिथिल हो गया था। अतः एक कदम भी चलना अब उनके लिये अत्यन्त कठिन था। महर्षि एक जलाशयके पास पहुँचकर बैठ गये और अपनी स्त्रीसे बोले --'पतिव्रते ! तुम्हारे पास पल्लेके बँधे हुए जो उड़द हैं, वे यदि तुम मुझे दे दो तो मैं अपनी भूखकी ज्वालाको शान्त कर लूँ। सुना है, पास ही ग्राममें कुरुदेशका राजा इंद्र-याग कर रहा है। उसके यहाँ चलकर मैं भी ऋत्विज बन सकूँगा और तुम्हारे तथा मेरे निर्वाहके लिये पर्याप्त अन्न प्राप्त कर सकूँगा। भोजन न मिलनेपर तो मेरा वहाँतक पहुँचना बिल्कुल असम्भव है। भूखके कारण अब एक कदम भी चलनेकी शक्ति नहीं है, अतः मुझे अपने उड़द दे दो तो बहुत अच्छा हो।' पतिके इस वचनसे ऋषिपत्नीके हृदयमें करुणा आ गयी और उसने तुरंत अपने वस्त्रके पल्लेसे उड़द खोलकर उन्हें दे दिये। ऋषिने उड़द खाकर अपने उदरकी ज्वालाको शांत किया और जलाशयका शीतल जल पीकर अपनी आत्माको शीतल किया। रात्रिभर विश्राम करनेके पश्चात् दोनों पति-पत्नी प्रातःकाल कुरुदेशके नृपके द्वारा आयोजित यज्ञकी ओर चल दिये।

कुरुदेशका राजा इस कुरुदेशमें फैले हुए अकालका एकमात्र कारण अपनेको ही समझ रहा था। 'राजाके ही दोषसे प्रजाको कष्ट हुआ करता है' —यह एक शास्त्रोंका नियम है। राजा जब सारे भौतिक उपाय करके हार गया, तब उसने यज्ञके द्वारा इंद्रदेवको प्रसन्न करनेका विचार किया। विभिन्न भागोंसे निमन्त्रित कर ऋषियोंको ऋत्विज-कार्य करनेके लिये बुलाया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गया। बड़ी धूमधामसे यज्ञ प्रारम्भ हुआ। विधिपूर्वक अग्निस्थापन किया गया। वेद-मंत्रोंकी ध्वनिसे आकाश गुंज उठा। यज्ञके धूमसे सारा वायुमण्डल व्याप्त हो गया। समय उषस्ति यज्ञमण्डपमें पहुँचे और प्रस्तोतासे बोले--'भगवन्! आप जिन देवताकी स्तुति कर रहे हैं, क्या उनके स्वरूपसे परिचित हैं? यह आपको विदित हो कि जिस प्रकार स्वरहीन तथा अर्थहीन मंत्र वज्र बनकर यजमानके लिये घातक बन जाता है, उसी प्रकार देवताका स्वरूप जाने बिना उच्चारण किया गया मंत्र भी घातक होता है। देवताका स्वरूप जाने बिना आप किस देवकी स्तुति कर रहे हैं?' प्रस्तोता वास्तवमें देवताके स्वरूपसे सर्वथा अनभिज्ञ था। अतः वह निरुत्तर था।

उद्गातासे भी उषस्तिने वही प्रश्न किया; परंतु कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। प्रतिहर्तासे भी उषस्तिने पूछा--'क्या आप अपने कार्यसे सम्बन्ध रखनेवाले देवताके स्वरूपसे परिचित हैं? प्रतिहर्तासे भी उत्तर नकारात्मक ही मिला। राजा यह सब अवाक् होकर देख-सुन रहा था। राजाने विनीतभावसे उन नवागन्तुक ऋषिसे आश्चर्यके साथ कहा--'महाराज! आपके मुखमण्डलके अपूर्व तेजको देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप कोई बड़े भारी ऋषि हैं। अतः अपना परिचय देनेकी कृपा करें।' महर्षिने कहा --'राजन्! मेरा नाम उषस्ति चाक्रायण है। कुरुदेशमें अकाल पड़ गया, इसलिये उदरकी ज्वालासे संतप्त होकर मैं भटकता हुआ आपके यहाँ आ निकला हूँ।' राजा महर्षि उषस्ति चाक्रायणको अनायास ही आये देखकर अति प्रसन्न हुआ और बोला-- 'महर्षे! मैंने आपकी बड़ी खोज की; परंतु दुर्भाग्यवश आप मिले नहीं, अतः मैंने इन्हीं ब्राह्मणोंको ऋत्विज बनाकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। अब आप आ गये हैं। अतः यह कार्य आपको ही करना होगा। महर्षिने भी राजासे कहा--'राजन्! मैं आपका ऋत्विज बनना एक शर्तपर स्वीकार कर सकता हूँ। वह शर्त यह है कि इन ऋत्विजोंको आप हटायें नहीं, ये मेरे आज्ञानुसार कर्म करें और मुझे तथा इन ऋत्विजोंको आप समान दक्षिणा दें और सम्मान भी मेरा इनसे अधिक न करें। बस, तभी मैं आपका इस यज्ञमें ऋत्विज बन सकता हूँ। अन्यथा मुझे आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं है।' राजा महर्षिकी इस निरभिमानितापर बड़ा प्रसन्न हुआ। महर्षि उषस्तिने यज्ञ-कर्मका ऋत्विज बननेसे पूर्व प्रस्तोतासे कहा--'भगवन्। आपके कर्मके देवता प्राण हैं। ये ही सारे संसारके आधार हैं। इनके ही सहारे सारे संसारकी स्थिति है। ये ही विश्वके अधिष्ठाता हैं। उद्गाताके कर्मसे सम्बद्ध देवता आदित्य (सूर्य) है। वही सारे विश्वको प्रकाश प्रदान करता है। विश्वकी चेतनाका एकमात्र कारण वही है। उसके अभावमें सारे विश्वको अंधकार अपने अंदर समेट लेता है। प्रतिहर्ताके कार्यसे सम्बन्ध रखनेवाला देवता अन्न है। अन्नपर ही सारे संसारका जीवन अवलम्बित है। अन्नके बिना किसीका भी जीना अत्यंत कठिन है। अतः यही सबसे बड़ा देवता है।'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

महर्षि उषस्तिने इस प्रकार देवोंका स्वरूप समझाकर जब यज्ञ प्रारम्भ किया, तब इन्द्रदेव प्रसन्न हो गये और उन्होंने यथेष्ट वर्षाकर दी। सारी भूमि पुनः जलसे आप्लावित हो गयी। अकालका दुष्प्रभाव नष्ट हो गया। सारी प्रजा यज्ञकी महिमाका गुणगान करने लगी। इस प्रकार महर्षि उषस्तिने अपने मन्त्रोंके बलसे प्रजाको कष्टसे मुक्त कर दिया।

—०—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एक बालक का सत्यप्रेम

प्राचीन कालमें वाजश्रवस (वाजश्रवाके पुत्र) नामक एक महर्षि थे। वे वेद-विद्यामें पारंगत थे। तपस्याकी अक्षय निधि उन्होंने संचित कर रक्खा था। उनके आश्रममें हजारों ब्रह्मचारी वेदोंका अध्ययन करनेके लिये दूर-दूरसे आते थे और महर्षि उन्हें अन्न-वस्त्र देकर निश्शुल्क विद्यादान करते थे। इस प्रकार महर्षिकी अवस्था जब कुछ ढलने लगी, तब उन्होंने विश्वजित् यज्ञ करके देवोंको प्रसन्न करनेका विचार किया। बड़े-बड़े ऋषियोंको बुलाकर उनको यज्ञ का ऋत्विक बनाकर महर्षिने यज्ञ प्रारम्भ किया। विश्वजित् यज्ञमें सर्वस्व दान करनेका शास्त्रोंका नियम था। उसी नियमके अनुसार महर्षि वाजश्रवसने भी अपना सारा धन ऋषियोंको दे दिया। फिर उनके पास जो बूढ़ी गायें थीं, उनको भी ऋत्विजोंको देनेका विचार किया। ये गायें बिल्कुल बृद्ध थीं उनके सब दाँत टूट चुके थे और वे अब पानी भी पीनेमें कष्टका अनुभव करती थीं। घास चरना तो वे कभीका छोड़ चुकी थीं तथा गर्भ धारण करनेमें भी असमर्थ थीं। महर्षि वाजश्रवस इनको अपनी सम्पत्ति समझते थे। इसलिये यज्ञकी समाप्तिपर ये गायें ऋत्विजोंको उन्होंने देना शुरू किया। ऋत्विज इस प्रकारकी वस्तु पाकर अत्यन्त विस्मित थे और महर्षि वाजश्रवसके कार्यकी मन-ही-मन निन्दा कर रहे थे परंतु महर्षिको कहनेका किसीको साहस नहीं होता था। महर्षिके शापसे सब भय खाते थे। बेचारे मन मारे उन जराजीर्ण गायोंको लिये जा रहे थे।

महर्षि वाजश्रवसके एक छोटा-सा लड़का था, जिसका नाम था 'नचिकेता।' यद्यपि बालक वहुत छोटी अवस्थाका था, परंतु था बड़ा मेधावी और विचारशील। उसे उन बूढ़ी गायोंकी दशा देखकर दया आ गयी। उसने अपने मनमें सोचा कि 'पिताजी इन बूढ़ी गायोंको दानमें देकर कौन-सा पुण्यका काम कर रहे हैं। इस बुढ़ापेमें इनको शरण देनी चाहिये थी। जिनका जन्मभर दूध पिया, क्या इस अवस्थामें उन्हें दानमें देना उचित है? इन ऋत्विजोंको भी इनसे कोई लाभ नहीं होगा। ये इनके लिये भी भाररूप हो जायेंगी। ये इन्हें घर ले जाकर छोड़ देंगे। बेचारी निर्दोष गायें व्यर्थमें कष्ट भोगेंगी। पिताजीको भी पुण्यके स्थानमें पाप ही होगा। 'यों सोचकर वह बालक तुरंत अपने पिताके पास गया और उनसे आदरपूर्वक यों निवेदन करने लगा—'पिताजी! इन बूढ़ी गायोंको आप क्यों इन ऋत्विजोंको दे रहे हैं, मैं भी तो आपकी सम्पत्ति हूँ। आप मुझे भी किसको देंगे?' बालकने इसी प्रश्नको अपने पितासे कई बार पूछा; परंतु पिताने बालकको नादान समझकर उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। वे अपने कार्यमें व्यस्त रहे। पितासे अपने प्रश्नका कुछ भी उत्तर न पाकर बालककी आत्माको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बड़ी ठेस लगी। उसने मनमें सोचे--'पिताजी इन मरणासन्न गायोंको क्यों इन ऋत्विजोंको दे रहे हैं? दान तो वास्तवमें किया जाता है बहूमूल्य, प्रिय और काममें आने योग्य वस्तुका।'

यों सोचकर उसने फिर वही प्रश्न किया। अबकी बार महर्षि बालककी धृष्टतापर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और बोले--तुझे देता हूँ मृत्यु (यमराज) को। पिताके इस प्रकारके अप्रत्याशित उत्तरको सुनकर बालक आश्चर्यमें पड़ गया और सोचने लगा--शिष्य और पुत्र तीन तरहके होते हैं--उत्तम, मध्यम और अधम। आज्ञाकी प्रतीक्षा किये बिना अभिप्राय समझकर ही सेवा करनेवाले उत्तम, आज्ञा पानेपर करनेवाले मध्यम और आज्ञा पानेपर भी गुरु या पिताके इच्छानुसार काम न करनेवाले अधम। मैं अधम तो कदापि नहीं हूँ। तथापि समझमें नहीं आता कि 'आखिर, यमको मुझसे क्या कार्य है जो कि पिताजीने मुझे यमको देने के लिये कहा है।' परंतु दूसरे ही क्षण उसका हृदय हर्षसे खिल गया और उसने पिताके इन वचनोंको वरदान समझा। उसने विचार किया कि यमराज अध्यात्मविद्याके पारदर्शी और सारे प्राणियोंके शुभ-अशुभ कर्मोंके साक्षी हैं; उन यमके दर्शन तथा उपदेश मुझको प्राप्त होंगे। तदनन्तर वह पिताके आज्ञानुसार यमलोकके लिये चल दिया और वहाँ जा पहूँचा।

सुन्दर यमपुरीको देखकर नचिकेताने अपनेको धन्य माना। साक्षात् धर्मराज यम जहाँ विराजते हैं, उस नगरीके सौन्दर्यका क्या ठिकाना था। वहींपर धर्मात्माओंको सद्‌गतिमें पहुँचाने तथा पापियोंको नरकमें डालनेकी व्यवस्था की जाती है और इस प्रकार यमराज सारे संसारको शुभ मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करते हैं।

बालक नचिकेता यमपुरीके स्वमी धर्मराज यम (मृत्यु) का भवन पूछते-पूछते उनके द्वारपर जा पहुँचा। यमके द्वारपर द्वारपाल पहरा दे रहे थे। उस भवनके अनेक दरवाजे थे। उसकी सुन्दरता अवर्णनीय थी। बालक अत्यन्त चकित हो उसकी सुन्दरता देखनेमें लग गया। उधर उस बालक नचिकेताके अद्वितीय ब्रह्मतेजसे द्वारपाल भी आश्चर्यमें पड़ गये। उस बिना बुलाये आये हुए अतिथिसे द्वारपालोंने नम्रतापूर्वक प्रश्न किया—'ब्रह्मचारी! तुम जिस नगरमें किस कार्यसे आये हो? इस नगरमें तो लोग जबरदस्ती बुलानेपर भी आते हुए काँपते हैं। तुम इतने प्रसन्न-चित्त हो कि यहाँपर बिना बुलाये ही आये हो। 'मुझे भगवान् यमसे मिलना है,' नचिकेताने विनयपूर्वक उत्तर दिया। द्वारपाल उससे बोले—भगवन्! यमराज कार्यवश अन्यत्र गये हुए हैं, अतः आप तीन दिनतक विराजें। चौथे दिन भगवान् धर्मराज पधारेंगे। तब आप उनसे मिल सकेंगे।' बालक नचिकेता द्वारपालोंके मुखसे यमकी अनुपस्थितिका समाचार सुनकर अत्यन्त खिन्न हुआ और यमके आनेकी प्रतीक्षामें बैठा रहा।

चौथे दिन प्रातःकाल ही यमराज आये और उस अपूर्व तेजस्वी बालकको दरवाजेपर खड़ा देख आश्चर्यपूर्वक बोले--'ब्रह्मचारी! आप यहाँ कैसे? यहाँ तो बिना बुलाये कोई

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी प्राणी आनेका साहस नहीं करता है। आप अपनी निर्भयतापूर्वक इस नगरमें आ गये हैं। ऐसा कौन-सा मुझसे कार्य है जिसके लिये आपने यहाँ आनेका कष्ट किया। मुझे खेद है कि मैं यहाँपर था नहीं और आपको तीन दिनतक मेरी प्रतीक्षा भूखे और प्यासे रहकर करनी पड़ी। अतिथिका सत्कार करना मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है। अतिथि जिस आशा से आता है उसके पूरा न होनेपर वह निराश होकर लौट जाता है और अतिथिका निराश होकर लौट जाना अत्यन्त पापका मूल है। आप मेरे घरपर तीन दिनतक विना खाये-पिये रहे। यह मुझसे बड़ा अपराध हुआ है। मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। प्रत्येक रात्रिके लिये एक-एक वरके हिसाबसे आप तीन वर मुझसे माँगिये। मैं आपको देनेके लिये तैयार हूँ।'

नचिकेताने यमसे अपने पिताके क्रोधका सारा वृत्तान्त निवेदन करते हुए कहा—हे धर्मराज! यदि आप सचमुच मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसा वरदान दीजिये जिससे मेरे पिताजीका क्रोध शान्त हो जाय और जब मैं यमलोकसे लौटूँ, तब वे मुझे पहचानकर स्नहसे बातचीत करें।' यमने उसके इस वरको स्वीकार करते हुए दूसरा वर माँगनेके लिये कहा। नचिकेताने भी यमसे कहा—भगवन् हमने स्वर्गलोककी बड़ी प्रशंसा सुन रक्खी है। उसमें रहनेवालोंको कोई भी कष्ट नहीं सताता। भूख और प्यासके दुःखसे वे संतप्त नहीं होते। इस स्वर्गकी प्राप्ति जिस अग्निविद्यासे होती है, उसी विद्याका रहस्य मुझे समझाने की कृपा करें। यमराजने अत्यंत प्रसन्न हो अग्निविद्याका सारा भेद नचिकेताको समझा दिया। विषय अत्यंत अठिन था; परंतु उस मेधावी बालकको इस विषयको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। तृतीय वरदान नचिकेताने माँगा—'धर्मराज! मृत्युका तत्व या आत्मतत्त्व मुझे समझानेका कृपा करें। क्या शरीरके अतिरिक्त भी कोई ऐसी वस्तु है जो प्राण निकल जानेपर भी नष्ट नहीं होती है? आत्माका अस्तित्व है या नहीं? यदि है तो उसके जाननेका क्या उपाय है। वह आत्मा क्या है तथा आत्मज्ञानसे मनुष्यको कौन-सा लाभ होता है? मुझे ये सब बातें समझानेकी कृपा करें। आप मृत्युके देवता हैं, अतः इस रहस्यका जाननेवाला आपसे बढ़कर मिलना अति दुर्लभ है।'

नचिकेताके इस आत्मसम्बन्धी प्रश्नको सुनकर यम आश्चर्यमें पड़ गये और बोले—'ब्रह्मचारी! इस प्रश्नके उत्तरसे तुमको कौन-सा लाभ होगा? यह व्यर्थका प्रश्न है। तुम्हें इसको जाननेका व्यर्थ श्रम नहीं करना चाहिये। यह अति कठिन समस्या है। इसको जानना बड़ा कठिन है। तुमको इसके बदलेमें स्त्री, रथ, घोड़े, धन., राज्य और अन्य भौतिक सुख प्राप्त करनेका वरदान माँगना चाहिये।

नचिकेताने उत्तर दिया—भगवन्! ये सुख क्षणिक हैं और बुद्धिमान् इन सुखोंको वास्तविक सुख नहीं समझता है। क्या नाशवान् वस्तु भी कभी सच्चा सुख दे सकती है?

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सच्चा सुख तो शाश्वत वस्तुको प्राप्त करनेपर ही मिल सकता है। ये भौतिक सुख आप किसी अन्यको दें। मुझे आपको इन वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं है। मुझे तो आप आत्मज्ञान ही बतलाइये।'

नचिकेताके इस प्रकारके अध्यात्म-प्रेमको देखकर यम अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बोले—ब्रह्मचारी ! यह आत्मा शरीरसे बिल्कुल भिन्न चीज है। मृत्युके बाद भी जिस वस्तुकी स्थिति बनी रहती है, वह आत्मा। उसका कभी नाश नहीं होता। शरीरके नाश होनेपर भी वह नष्ट नहीं होता है। संसारके नानातत्वमें एकता स्थापित करनेवाला आत्मा ही है। यह बड़ा गहन तत्त्व है। देवता भी इसके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं बतला सकते। यह सत्, चित् और आनन्दरूप है। इसको कभी कोई सुख और दुःख नहीं सताते हैं। जबतक मनुष्य को इसका ज्ञान नहीं होता, तबतक अज्ञानमें फँसकर संसारके दुःखोंको भोगना रहता है।' नचिकेता इस गूढ़ रहस्यको पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो आत्मज्ञानमें लीन हो गया।

धन्य है वह देश, जहाँके छोटे-छोटे बालक भी अध्यात्म चिन्तनमें तत्पर हो देशके नैतिक स्तरको अत्यन्त ऊँचा उठाते थे। साथ ही सत्यके लिये कष्ट सहन करनेको तैयार रहते थे। ऐसे साहसी और सत्यनिष्ठ बालक ही किसी देशका मस्तक उन्नत कर सकते हैं। कायरता ही सब पापोंका मूल है। निर्भयता सब धर्मोंकी जननी है। नचिकेताकी जीवनी हमारे लिये यही अमर संदेश प्रदान कर हमको सत्यके पथका अनुसरण करनेके लिये प्रेरित करती है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुराण-परिचय

प्रस्तावना---

भारतीय साहित्यमें पुराणोंका बहुत बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। साधारण जनतामें भारतीय संस्कृतिका इतना अधिक प्रचार जो आज दिखायी पड़ता है, उसका कारण ये पुराण ही हैं। आज भी पुराणोंका जितना साधारण जनतामें प्रचार है, उतना किसीका नहीं। परंतु पुराणतत्त्वसे पूरी जानकारी न होनेके कारण पाश्चात्य विद्वान् पुराणोंको कपोल-कल्पित मानते हैं। वे पौराणिक कथाओंको कोरी गप्प बताकर उनकी उपेक्षा करते हैं। खेदकी बात है कि उन्हींकी देखा-देखी पाश्चात्य शिक्षाप्रणालीके प्रभावमें रहनेवाले भारतीय विद्वान् भी इनको कोरी कल्पना बतलाने लगे थे; परंतु हर्षका विषय है कि अब उनकी ओर उन विद्वानोंका भी ध्यान आकृष्ट हुआ है! इनको भी वे भारतीय इतिहासकी प्रधान निधि बतलाने लगे हैं!

पुराणका अर्थ-----

पुराण शब्दका अर्थ है प्राचीनतम ग्रन्थ। प्राचीनताके कारण इनका नाम पुराण पड़ा। भारतीय साहित्यमें इतिहासके साथ पुराणोंका भी नाम आता है। इतिहासकी अपेक्षा पुराणोंका विषय अधिक विस्तृत है। इसीलिये इतिहाससे पुराणको अलग रक्खा गया है। सृष्टिकी रचना; उसका विस्तार, वंशोंका वर्णन, मन्वन्तरोंका वर्णन और प्रत्येक मनुके वंशधर देव-दानव, ऋषि-महर्षि एवं राजाओंका वंश-चरित्र वर्णन---साधारणतया पुराणोंमें यही पाँच बातें रहती हैं, परंतु इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें पुराणमें मिलती हैं। पुराणमें वैद्यक, ज्योतिष, कला, साहित्य और भूगोल आदिका भी बड़े विस्तारसे वर्णन मिलता है।

भारतीय संस्कृतिका सच्चा रूप तभी विदित हो सकता है, जब पुराणोंका ज्ञान प्राप्त किया जाय। सच्चा इतिहास पुराणोंमें ही हमें मिलता है। जबतक किसी देशकी कहानी सृष्टिके प्रारम्भसे न लिखी जाय, तबतक उसे अधूरा ही समझना चाहिये। इसकी पूर्ति हमें पुराणोंमें मिलती है, इसलिये भारतका सच्चा इतिहास यदि जानना हो तो इनको जरूर पढ़ना चाहिये। आज भारतीय संस्कृतिका सच्चा स्वरूप न जाननेके कारण ही देशके नवयुवकोंमें अनुशासन और देश-प्रेमकी भावनामें कमी आ रही है।

पुराणोंका अध्ययन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जो चीज जैसी ही हो,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सको उसी रूपमें समझा देना--यह काम तो वैज्ञानिकका है। इस बातपर ध्यान देते हुए यदि पुराणोंको पढ़ा जाय तो अनेक तथ्य मिल जाते हैं। धर्मका सच्चा रूप कहानियोंके रूपमें हमें पुराणोंमें ही मिलता है।

पुराणोंका महत्त्व-----

अनेक दृष्टियोंसे पुराण हमारे लिये बड़े उपयोगी हैं। बड़ी सरल भाषामें उदाहरण देकर मानव-जीवनको ऊँचा उठानेवाले सिद्धान्तोंका वर्णन इन्हीमें हमें मिल सकता है। वेदोंकी भाषा वड़ी कठिन है, इसलिये सर्वसाधारण उनका मतलब समझ नहीं सकते। वेदोंके ही विषयोंको पुराणोंमें समझाकर लिखा गया है। परंतु खेद है कि कुछ महानुभाव उनके नामसे ही नाक-भौं सिकोड़ते हैं। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंका जीवन-चरित हमें पुराणोंमें ही लिखा हुआ मिलता है। प्राचीन भूगोलका इनमें इतना अधिक वर्णन मिलता है कि उसका जानना प्रत्येक भूगोल-प्रेमीके लिए जरूरी है। हमारे सारे तीर्थोंका वर्णन भी विस्तारके साथ इनमें मिलता है। अधिक क्या लिखा जाय, जीवनको ऊँचा उठानेवाले ज्ञानका इनमें इतना विशाल भंडार भरा है कि शायद ही अन्यत्र कहीं उतना प्राप्त हो सके।

पुराणोंकी रचना-----

ऐसा कहा जाता है कि अष्टादश महापुराणोंकी रचना महर्षि वेदव्यासने की है। महर्षि वेदव्यासने लोकोपकारकी भावनासे वेदोंके ज्ञान-भंडारको सरल भाषामें लिखकर सबके लिये सुलभ बना दिया। वास्तवमें वेद और पुराणोंमें कोई अन्तर नहीं है। दोनोंमें वे ही बातें हैं। इतना जरूर है कि पुराणोंमें वे बातें सरल और कहीं-कहीं बड़े विस्तारसे लिखी गयी हैं। भगवान् वेदव्यासने पुराणोंमें यह दिखाया है कि एक ही परमात्माकी विभूति नाना रूपोंमें प्रकट हो रही है। सभी देवी-देव उसी एक विभूतिके ही स्वरूप हैं। उनमें तत्त्वतः किसी प्रकारका विरोध नहीं है। आजकल के विभिन्न सम्प्रदाय परस्परमें जो घृणाका प्रचार कर रहे हैं, वह उनकी पुराणोंकी अनभिज्ञताका परिचायक है। वास्तवमें पुराणोंकी रचनामें लोकहितकी भावना भरी हुई है। मानव-जीवनको सुखमय बनानेके लिये जिन तत्वोंकी आवश्यकता है, उनका इनमें बडा विशद विश्लेषण किया गया है। भारतमें अत्यन्त प्राचीन-काल से पुराणोंका बड़ा सम्मान है। साक्षात् वेदोंमें तथा ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यकादि वैदिक ग्रन्थोंमें पुराणोंका सैकड़ों स्थलोंपर उल्लेख है। पुराणों में भगवान्‌के नाना स्वरूपों तथा अवतारोंकी कहानियाँ लिखी गयी हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य यही है कि भगवान्‌के लोक-रञ्जनकारी रूपोंके दर्शन सर्वसाधारणको हो सकें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुराणोंकी संख्या——

पुराण दो तरह के हैं——महापुराण और उपपुराण । इनमें महापुराण संख्यामें १८ हैं। इनकी नामावलि श्लोक संख्यासहित नीचे दी जाती है ——

क्रम-संख्या	पुराण-नाम	श्लोक-संख्या
१	ब्रह्मपुराण	१०,०००
२	पद्मपुराण	५५,०००
३	विष्णुपुराण	२३,०००
४	शिवपुराण	२४,०००
५	श्रीमद्भागवत	१८,०००
६	नारदपुराण	२५,०००
७	मार्कण्डेयपुराण	६,०००
८	अग्निपुराण	१५,०००
६	भविष्यपुराण	१४,०००
१०	ब्रह्मवैवर्तपुराण	१८,०००
११	लिंगपुराण	११,०००
१२	वाराहपुराण	२४,०००
१३	स्कन्दपुराण	८१,१००
१४	वामनपुराण	१०,०००
१५	कूर्मपुराण	१७,०००
१६	मत्स्यपुराण	१४,०००
१७	गरुड़पुराण	१६,०००
१८	ब्रह्माण्डपुराण	१२,०००

उपपुराण——

उपपुराण २० हैं। ये निम्नलिखित हैं——(१) सनत्कुमार, (२) नरसिंह, (३) नारदीय, (४) नान्दी, (५) शिवधर्म, (६) दुर्वासा, (७) कापिल, (८) मानव, (६) उषनस्,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(१०) ब्रह्माण्ड, (११) वरुण, (१२) कल्कि, (१३) वसिष्ठ, (१४) लिग, (१५) महेश्वर, (१६) साम्ब, (१७) सौर, (१८) पराशर, (१९) मारीच और (२०) भार्गव।*

---

*इधर चार प्रकारके पुराणोंका पता लगा है। नेपालमें ये ग्रन्थ हैं ऐसा मालूम हुआ है। इन चारोंको संख्या भी अठारह-अठारह वतायी जाती है। उनकी नामावलि इस प्रकार मिली है----

महापुराण--ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड।

उपपुराण---भागवत, माहेश्वर, ब्रह्माण्ड, आदित्य, पराशर, सौर, नन्दिकेश्वर, साम्ब, कालिका, वारुण, औशनस, मानव, कापिल, दुर्वासस, शिवधर्म, वृहन्नारदीय, नरसिह और सनत्कुमार।

अतिपुराण---कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द बृहद्धर्म, महाभागवत, देवी कल्कि, भार्गव, वासिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डी और लक्ष्मी।

पुराण---वृहद्विष्णु, शिवउत्तरखण्ड, लघुबृहन्नारदीय, मार्कण्डेय, वह्नि, भविष्योत्तर, वराह, स्कन्द, वामन, बृहद्वामन, वृहन्मत्स्य, स्वल्पमत्स्य, लघुवैवर्त और पाँच प्रकारके भविष्य।

—सम्पादक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुछ पुराणोंकी श्लोक-संख्यामें तथा अन्यान्य विषयोंमें भी मतभेद है। कई श्रीमद्भागवतको महापुराण मानते हैं जब कि कुछ विद्वान देवीभागवतको महापुराण बतलाते हैं। इसी तरह शिवपुराण और वायुपुराणके विषयमें भी मतभेद है। कुछ लोग शिवपुराणकी गणना महापुराणोंमें करते हैं; परन्तु अन्य विद्वान् वायुपुराणको महापुराण कहते हैं। पुराणोंकी कुल श्लोक-संख्या लगभग चार लाख है। हरिवंश-पुराणके साथ महाभारतमें एक लाख श्लोक हैं। उपपुराणोंमें करीब एक लाख श्लोक हैं। इस प्रकार इतिहाससहित पुराण-श्लोकसंख्या सात लाखके करीब है। विश्वके किसी भी साहित्यमें सम्भवतः इतने पद्य न मिलें। महर्षियोंने वेदके रहस्योंको सर्वसाधारणमें पहुँचाने के लिये कितना जबरदस्त परिश्रम किया है। नीचे प्रत्येक पुराणका अलग-अलग परिचय दिया जाता है, ताकि पाठक पुराणोंके कथानकसे परिचय प्राप्त कर सकें।

ब्रह्मपुराण

इसमें कुल २४५ अध्याय, १०,००० के करीब श्लोक हैं (कोई १४,००० मानते हैं)। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशावलि, मन्वन्तर, सोम और सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन इसमें अन्य पुराणोंकी भाँति ही किया गया है। इन विषयोंके अतिरिक्त इसमें भारतीय तीर्थोंका बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। ऐसे-ऐसे तीर्थोंके नाम इसमें आये हैं जिनका साधारण लोग नामतक भी नहीं जानते हैं। इसमें श्रीकृष्ण चरितका बड़े विस्तारके साथ वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवतके समान ही श्रीकृष्णकी लीलाओंका वणन इसमें भी है। मरणके बाद जीवकी क्या दशा होती है—इसका भी इसमें बहुत वर्णन किया है। इस पुराणमें भूगोलका उतना विस्तारसे वर्णन नहीं है। सांख्यदर्शनके विषयोंका सुन्दर विवेचन इस पुराणमें मिलता है। इस पुराणमें जो सांख्यके सिद्धांत वर्णित ह उनमें ईश्वरको भी माना गया है तथा साथमें भक्तिका भी पुट मिलता है। भक्तिका प्रतिपादन तो प्रत्येक पुराणमें ही मिलता है। इसके कुछ अध्याय महाभारतके कुछ अध्यायोंसे बिलकुल मिलते-जुलते हैं। इस पुराणमें धर्मको ही मानव-जीवनका लक्ष्य बतलाया है। चारों वर्णों और आश्रमोंका क्या धर्म है—इसका भी इसमें वर्णन हैं। पार्वतीकी कहानी इसमें बड़ी रोचकतासे वर्णित है। वेदान्तके ज्ञानका भी इसमें विश्लेषण मिलता है। पितृश्राद्धोंका भी इसमें वर्णन है।

पद्मपुराण

यह स्कन्दपुराणके अतिरिक्त सबसे बड़ा पुराण है। इसमें ५५,००० श्लोक हैं। इसमें पाँच खण्ड हैं—सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, पाताल और उत्तरखण्ड। किसीमें 'ब्रह्म' और 'क्रियायोगसार' दो खण्ड अधिक हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सृष्टिखण्ड--इसमें पुलस्त्य ऋषिके द्वारा भीष्मको सर्वप्रथम सृष्टिकी रचना कही गयी है। उसके बाद पुष्कर नामक तीर्थके माहात्म्य और ब्रह्माजीके यज्ञका वर्णन है। फिर दान कितनी तरहके होते हैं और उनसे क्या फल मिलता है इस विषयका विश्लेषण किया गया है। शिव-पार्वतीके विवाहकी कथा और उनसे उत्पन्न स्वामी कार्तिकके द्वारा तारकासुरके वध की कथा भी इसी खण्डमें है। भगवान् रामचन्द्रकी कथा, वृत्रासुर-संग्राम आदिकी भी बड़ी रोचक कथाएँ इसमें हैं।

भूमिखण्ड----इस खण्डमें सबसे पहले शिवशर्मा नामक ब्राह्मणकी कहानी है, जो अपने माता-पिताकी सेवाके द्वारा स्वर्गमें चला गया था। राजा पृथुकी कहानी इसमें देखने लायक है। महर्षि च्यवन और ययातिका कथानक भी बड़ा रोचक तथा शिक्षाप्रद है। सती सुकलाके पातिव्रत्यकी बड़ी सुन्दर कहानी भारतीय महिलाओंके द्वारा अनुकरण करने योग्य है। शिव और विष्णुको एक ही सिद्ध किया गया है।

स्वर्गखण्ड----सारे ब्रह्माण्डका वर्णन इसमें विस्तारसे किया गया है। शकुन्तलाकी कहानी देखने लायक है। कालिदासने अपने काव्य-नाटकादि पद्मपुराणके आधारपर ही लिखे हैं। कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंका माहात्म्य, विभिन्न वर्णोंके कर्तव्य, व्यास और जैमिनिका संवाद, समुद्र, समुद्र-मन्थन, व्रतोंका विस्तारसे वर्णन तथा उनका फल--ये इस खण्डके मुख्य विषयहैं।

पातालखण्ड----इस खण्डमें पाताल लोकके वर्णनके साथ निम्न बातें देखने लायक हैं--श्रीरामके राज्याभिषेक और अश्वमेधयज्ञका सुन्दर विस्तृत वर्णन, महर्षि पुलस्त्यके वंशका वर्णन, अनेक धार्मिक राजाओंकी कहानियाँ, वृन्दावनका वर्णन, श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन, माघ-स्नान-फल, महर्षि दधीचिकी और महर्षि गौतमकी कथा।

उत्तरखण्ड----इसमें अनेक कथाएँ हैं। प्रधानरूपसे विष्णुभक्तिका माहात्म्य वर्णित है। इस पुराणका विष्णु-भक्तिकी प्रशंसा खास विषय है। वैष्णवलोगोंमें इस पुराणका अत्यन्त प्रचलन है। इसमें एकादशी-माहात्म्य, गीताके प्रत्येक अध्यायका महात्म्य, भागवत माहात्म्य, वृक्षारोपण महिमा, कार्तिक-माघ माहात्म्य आदिके साथ ही श्रीराम तथा श्रीकृष्ण-अवतारोंकी कथा भी विस्तारसे वर्णित है। विष्णु-भक्तोंके चरित भी विस्तारसे वर्णित हैं।

विष्णुपुराण

विष्णुपुराणमें १२६ अध्याय हैं। यह पुराण विद्वानोंमें बड़े आदरके साथ देखा जाता है। इसके खण्डोंको अंश कहते हैं और वे छः हैं। इसके प्रथम अंशमें ृष्टि-वर्णनके बाद ध्रुव तथा प्रह्लादके चरित हैं। दूसरे अंशमें भूगोलका वर्णन है। तीसरे अंशमें चारों आश्रमोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धर्म बतलाये गये हैं। चौथे अंशमें इतिहासका वर्णन है जिसमें सोमवंशके राजाओंकी कथाएँ हैं। पाँचवें अंशमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन है। छठे अंशमें भक्तिकी विवेचना है। इस प्रकार यद्यपि यह पुराण है छोटा ही, परंतु साहित्यकी दृष्टिसे है बडा उत्कृष्ट कोटि-का। इसमें ज्ञान और भक्तिका समन्वय दिखलाया गया है। इस पुराणमें बहुत पढ़नेलायक सामग्री है। विष्णुभक्ति इस पुराणका मुख्य विषय है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणको लेकर २३ हज़ारकी संख्या पूर्ण होती है।

शिवपुराण और वायुपुराण

शिवपुराण शिवभक्तोंका यह बहुत प्रिय ग्रन्थ है। इसमें एक ही परमतत्त्व शिवसे त्रिदेवोंके प्राकट्य, ज्योतिर्लिङ्ग-प्रादुर्भाव, सती-चरित्र, पार्वतीजन्म-विवाह, त्रिपुर-वध, शिव-पूजा-विधि, काशी-महिमा, अर्जुनद्वारा इन्द्रनील पर्वतपर शिवाराधनाका वर्णन है। इसीके आधारपर भारविने 'किरातार्जुनीय लिखा है। पार्थिवपूजा-विधि, शिवसहस्रनाम, शिव-रात्रिमहिमा आदि अनेकानेक सुन्दर कथाएँ हैं। वर्तमानमें इसकी सात संहिताएँ हैं—विद्येश्वर, रुद्र, शतरुद्र, कोटिरुद्र, उमा, कैलास और वायु एवं २४,००० श्लोक हैं। पर इसके संस्करणोंमें मतभेद है।

कुछ लोग 'वायुपुराण' को महापुराण मानते हैं। वायुपुराणमें श्लोक बहुत थोड़े हैं। इसमें ११२ अध्याय हैं। इस पुराणमें चार खण्ड हैं जिनको पाद कहा जाता है। वे हैं———प्रक्रिया-पाद, अनुषंग-पाद, उपोद्‌घातपाद, उपसंहारपाद।

इस पुराणमें सर्वप्रथम सृष्टि-वर्णन है। उसके बाद भूगोलका बड़ा विशद् वर्णन किया गया है। जम्बूद्वीपका बड़ा सुन्दर वर्णन तो इसमें दिया ही है। परंतु अन्य द्वीपोंका भी वर्णन इसमें अच्छा दिया हैं। भूगोलके साथ खगोलका भी अच्छा वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त इसमें निम्न वर्णन है———वेदोंकी शाखाओंका वर्णन, ऋषियोंकी वंशावलि, संगीत-विद्याका वर्णन और प्राचीन राजाओंका वर्णन।

यह पुराण साहित्य तथा भूगोलज्ञानकी दृष्टिसे बड़ा महत्वपूर्ण है। परंतु इसमें साम्प्रदायिकताका कहीं नाम भी नहीं है। अवतारोंका वर्णन तथा पाशुपतयोगका भी इसमें वर्णन विस्तारके साथ किया गया है। विद्वानोंमें इस पुराणका बड़ा आदर है। इसमें बड़ी जानने योग्य सामग्री है। खास तौरसे भूगोल-ज्ञानके लिये इसका बड़ा महत्त्व है।

श्रीमद्भागवत

पुराणोंमें जितना प्रसिद्ध श्रीमद्‌भागवत है, उतना अन्य कोई नहीं है। भक्तोंके तो यह हृदयका हार है। यह सारे शास्त्रोंका निचोड़ है। इसके श्लोक बड़े सुन्दर और साहित्य-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की दृष्टिसे उत्कृष्ट कोटिके हैं। इसमें १२ स्कन्ध हैं। इसके नामसे प्रायः प्रत्येक भारतीय परिचित है, चाहे वह पठित हो या अपठित। यह भक्तिका भंडार है। अन्य पुराणोंकी भाँति सृष्टि आदिका इसमें भी वर्णन है, परंतु इसमें मुख्यतया श्रीकृष्णलीलाओंका और भक्तों-के चरित्रोंका वर्णन है। इसीकी कथाके आधारपर हिंदीके कृष्णभक्त कवियोंने कितनी ही उच्च कोटिकी रचनाएँ की हैं। इस पुराणमें ज्ञान और भक्तिका समन्वय दिखायी पड़ता है। वास्तवमें वह भक्ति धन्य है जिसकी चरम सीमापर पहुँचकर मनुष्य प्राणीमात्रमें उस परम प्रभुकी सत्ताका अनुभव करता हुआ उस प्रभुके गुणानुवादमें मस्त रहता है यही तो जीवनका सच्चा लाभ है। इसी भावका प्रतिपादन श्रीमद्भागवत करता है। प्रह्लाद और ध्रुव आदिके चरित्र आज भी हमारे नवयुवकोंका पथप्रदर्शनकर रहे हैं। भाव और भाषा दोनों की दृष्टिसे इसका पुराणोंमें अनुपम स्थान है। सब पुराणोंमें यह श्रेष्ठ समझा जाता है। सूरदासने सूरसागरमें इसीका पदोंमें अनुवाद किया है----ऐसा बतलाते हैं। इसमें १८,००० श्लोक हैं।

नारदपुराण

इस पुराणके दो भाग हैं। प्रथम भागमें १२५ अध्याय हैं और द्वितीय भागमें ८२ अध्याय। इसमें २५,००० श्लोक हैं। इसमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर कथाएँ हैं। प्रारम्भमें सृष्टि-वर्णन है। तदनन्तर अनेक धार्मिक उपाख्यान देखने लायक हैं। इसी भागमें मोक्षके उपायोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। व्याकरण, ज्यौतिष, निरुक्त, छन्द आदि शास्त्रोंके विषयों का विवेचन, मन्त्रशास्त्रका प्रतिपादन और गणेश, सूर्य आदिकी स्तुतियाँ इसीमें वर्णित हैं। इसीमें पुराणका लक्षण और अलग-अलग दोनोंका विस्तारसे वर्णन है। इसके द्वितीय भागमें निम्नलिखित विषय हैं---एकादशीके व्रतका महत्त्व, वसिष्ठ और राजा मान्धाताका संवाद, गंगा तथा यमुनाका वर्णन, हरिद्वार, काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र आदि अनेक तीर्थोंका महत्त्व। तीर्थोंका माहात्म्य जाननेके लिये यह पुराण एक सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस पुराणमें विष्णुभक्तिका सुन्दर विवेचन है। उसीको मुक्तिका परम साधन बतलाया है। भक्तिके प्रसंगमें ही अत्यंत प्रसिद्ध विष्णुभक्त राजा रुकमाङ्गद की कथा कही गयी है।

इतिहासकी दृष्टिसे इस पुराणका विशेष महत्त्व है। इसमें अठारहों पुराणोंके विषयोंकी सूची विस्तारसे दी गयी है। इसमें भी पुराणोंके लक्षण सभी घटते हैं। नारदजीके द्वारा विष्णुभक्तिका विवेचन इसमें किया गया है, इसलिये इसका नाम नारदीय पुराण है।

मार्कण्डेयपुराण

यह पुराण मार्कण्डेय मुनिके द्वारा कहा गया है, इसलिये इसका नाम मार्कण्डेयपुराण पड़ गया। यह पुराण परिमाणमें बहुत बड़ा नहीं है। इसमें केवल ६,००० श्लोक हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस पुराणका अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओंमें भी हो चुका है। पाश्चात्य विद्वान् इसको सबसे प्राचीन, लोकप्रिय और उपादेय बतलाते हैं। अति प्राचीन प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी मदालसाकी जीवनी इसी पुराणमें विस्तारसे मिलती है। उसने यह ज्ञान अपने पुत्र अलर्कको बतलाया था, जिससे भक्ति और ज्ञानका सामंजस्य करके दिखाया। शाक्तोंका ही नहीं, समस्त लोक-परलोककी सुख-समृद्धि चाहनेवालोंका प्रिय प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दुर्गासप्तशती' भी इसी पुराणमें है। देवीका चरित्र इसमें खूब विस्तारके साथ बतलाया गया है। इन विषयोंके अतिरिक्त पुराणोंके विषय सृष्टि, मन्वन्तर, सोम और सूर्यवंशी राजाओंका वर्णन भी इसमें किया गया है। सांख्यदर्शनके सिद्धान्तोंका इसमें भी वर्णन है। देवीकी कथाके लिये ही यह पुराण खास तौरसे प्रसिद्ध है।

अग्निपुराण

इस पुराण में १५,००० श्लोक हैं। इसमें सभी भारतीय विद्याओंका विवेचन किया गया है। एक प्रकारसे यह संग्रह-ग्रन्थ-सा मालूम पड़ता है। इसमें निम्नलिखित विषय हैं---रामायण और महाभारतकी कथा, अवतारोंका वर्णन, मन्दिर तथा मूर्तिनिर्माण और पूजनका प्रकार, योगदर्शनके वर्णन, वेदान्तदर्शनके विषयोंका वर्णन और गीताका सार। इनके अतिरिक्त व्याकरण, ज्योतिष, राजनीति, आयुर्वेद, रत्न-विज्ञान, गो-विज्ञान, छन्द और अलंकारोंका भी इसमें विवेचन किया गया है। इसमें कोषका भी विषय आया है। इस तरह सभी विद्याओंका यह खजाना है। इसी कारण विद्वानोंने इसको बहुत बादकी रचना माना है। पुराणोंका उद्देश्य वास्तवमें सर्व साधारणमें विद्याओंका प्रचार करना था, इसीलिये प्रायः सभी पुराणोंमें विभिन्न विषयोंका समावेश किया गया था। इसी एक पुराणको पढ़कर मनुष्य सारे विषयोंकी जानकारी आसानीसे प्राप्त कर सकता है। है भी यह आकारमें छोटा ही। भाषा भी इसकी बड़ी सरल है। यह पुस्तक सब विषयोंके ज्ञानके लिये अत्यंत उपयोगी है।

भविष्यपुराण

इस पुराणमें १४,००० श्लोक हैं। इसमें आगे आनेवाली घटनाओंका वर्णन है। इसमें सारे युगोंके धर्मोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। इसमें कुल पाँच पर्व हैं। सृष्टिकी रचनासे प्रारम्भ करके सारे युगोंके मनुष्योंके धर्म इसमें बतलाये गये हैं। सूर्यकी पूजाका विधान तथा फल इस पुराणमें समझाया गया है। कलियुगमें सूर्यपूजाका बड़ा भारी महत्त्व है—यह इस पुराणमें कई दृष्टांतोंसे समझाया गया है। सूर्यपूजाका तत्त्व तथा विधान इसमें बतलाया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्मवैवर्तपुराण

इस पुराणमें चार खण्ड हैं। ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, श्रीकृष्णजन्मखण्ड और गणेश-खण्ड। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका इस पुराणमें बड़े विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। राधाको इस पुराणमें श्रीकृष्णकी शक्ति माना है और उसके रूपका विस्तारसे वर्णन है। इसी पुराणके आधारपर बादके हिंदी कवियोंने श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंको बड़े मनोहर रूपसे चित्रित किया है। इसके प्रथम खण्डमें श्रीकृष्णसे सृष्टिकी रचनाका वर्णन है। प्रकृतिखण्डमें श्रीराधाजीका वर्णन है जो भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा आदिका रूप धारणकर भगवान्‌की सेवामें तैयार रहती हैं। सावित्री और तुलसीकी भी कथाएँ इस खण्डमें हैं। गणेशखण्डमें गणेशजीका जीवन-चरित है। कृष्णजन्मखण्डमें श्रीकृष्णकी ही जीवनी दी गयी है। इस पुराणका मुख्य विषय श्रीकृष्ण-भक्ति है और उन्हें ही सारे ब्रह्माण्डोंके पैदा करनेवाले माना है। श्रीमद्भागवत और इस पुराणके विषय प्रायः मिलते-जुलते हैं। तुलसी आदिका माहात्म्य तथा राधा और कृष्ण-नामकी व्युत्पत्ति इस पुराणमें देखने लायक है। इसमें १८,००० श्लोक हैं।

लिंगपुराण

इस पुराणमें भगवान शंकरकी लिंगरूपमें उपासना बतलायी गयी है, इसलिये इस पुराणका नाम लिंग है। इसमें पूर्व और उत्तर दो भाग हैं। लिंगकी उपासना कबसे और क्यों चली तथा उसका क्या विधान है---इत्यादि विषयोंका सुन्दर विवेचन इसमें किया गया है। शिवके २८ अवतारों तथा शिवके तीर्थोंका वर्णन इसमें मिलता है। शिवके विषयमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये इस पुराणका बड़ा महत्त्व है। इसमें कुल १६३ अध्याय और ११,००० श्लोक है। इसमें सनत्कुमारों, दधीचि, उपमन्युकी कहानियाँ पढ़नेयोग्य हैं। दान, श्राद्ध, सूर्यपूजा आदिका भी इसमें विधान बतलाया गया है। शिवके साथ ही कृष्णका भी महत्त्व बतलाया है। शिवप्रतिष्ठाका विधान भी इसमें खूब समझाया है। रुद्राक्ष-मालाधारणका बड़ा पुण्य इसमें बतलाया गया है।

वाराहपुराण

इस पुराणमें भगवान् विष्णुके वाराह अवतारकी कथा विस्तारसे वर्णित है। इसमें १२८ अध्याय और २४,००० श्लोक हैं। इसमें व्रतोंका विधान तथा फल बतलाया गया है। प्रत्येक मासकी द्वादशीका व्रत रखनेपर इसमें विशेष जोर दिया गया है। नचिकेताकी कहानी तथा मथुराके विभिन्न तीर्थोंका वर्णन इसमें विशेष द्रष्टव्य हैं। वे वृन्दावनकी भूमिका बड़ा महत्त्व इसमें बतलाया गया है। भगवान श्रीकृष्णने जिस भूमिमें लीलाएँ की, उसका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गान करके यह पुराण श्रीकृष्णभक्तिको सर्वोपरि सिद्ध करता है। यह पुराण अबतक आधा ही प्राप्त हुआ है।

स्कन्दपुराण

स्कन्दके द्वारा कथित होनेके कारण इसका नाम 'स्कन्दपुराण' है। स्कन्द शिव-पार्वतीके पुत्र थे। यह पुराण सब पुराणोंसे बड़ा है। इसमें ८१,१००० श्लोक हैं। इसमें निम्नलिखित सात खण्ड हैं--माहेश्वरखण्ड, वैष्णवखण्ड, ब्रह्मखण्ड, काशीखण्ड, रेवा-खंड, नागरखंड और प्रभासखंड।

खंडोंके क्रमसे इसमें निम्नलिखित विषयोंका वर्णन है----

(१) माहेश्वरखण्ड----माहेश्वरखण्डमें शिव-पार्वतीकी अनेक लीलाओंका वर्णन है।

(२) वैष्णवखण्ड----इस खण्डमें उड़ीसास्थित जगन्नाथजीके मन्दिर, पूजा-विधान और उससे सम्वद्ध अनेक प्रसंगोंका वर्णन है।

(३) ब्राह्मखण्ड----इसमें धर्मारण्य और उज्जयिनीके महाकालका तीर्थका वर्णन है।

(४) काशीखण्ड----इसमें काशीपुरीका माहात्म्य विस्तारसे वतलाया गया है।

(५) रेवाखण्ड----इसमें सत्यनारायणकी कथा और नर्मदा नदीके तटके तीर्थोंका वर्णन है।

(६) नागरखण्ड----इसमें हाटकेश्वर महादेव, नागर ब्राह्मण तथा गुजरातके तीर्थोंका वर्णन है। अन्य मतानुसार तापीखंड है, जिसमें तापी नदीके तीर्थोंका वर्णन है। तापी नर्मदाकी सहायक नदी है।

(७) प्रभासखण्ड----प्रभासक्षेत्रका इसमें विस्तारसे वर्णन है। द्वारकाके पासके स्थानका नाम प्रभासक्षेत्र है। इसमें नाडीजंघका उपाख्यान और महिषासुरका वध भी विस्तार से वर्णित हैं। यह पुराण बहुत बड़ा पुराण है तथा विषयकी दृष्टिसे इसका बड़ा महत्त्व है। धार्मिक क्षेत्रोंका प्रायः इसमें वर्णन मिलता है।

वामनपुराण

इसमें १०,००० श्लोक हैं। इसमें भगवान् विष्णुके वामन अवतारकी कहानी दो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गयी है। विष्णु के अवतारोंका और उनमें भी विशेषतया वामनके चरितका इसमें वर्णन है। इसमें भी पूर्व और उत्तर दो भाग हैं। इसमें विष्णुके अवतारोंके अतिरिक्त शिव, गणेश, कार्तिकेय आदिके भी चरित है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित विषय इसमें द्रष्टव्य हैं—जाबालिकी कहानी, कुरुक्षेत्रके तालाबका माहात्म्य, प्रह्लाद और बलिका संवाद और मरुद्गणोंकी जन्म-कथा। कुरुक्षेत्रका वर्णन इस पुराणमें विस्तारसे मिलता है।

कूर्मपुराण

इसमें १७,००० श्लोक हैं और इसमें भगवान्के कूर्म अवतारकी कथा है। इस पुराणमें विष्णु तथा शिवका माहात्म्य समानरूपसे वर्णित है। शक्ति-पूजापर भी इसमें बड़ा जोर दिया गया है। इसमें साम्प्रदायिकताकी तनिक भी गन्ध नहीं है। सभी देवता समान हैं। इस पुराणके भी पूर्व और उत्तर दो भाग हैं। पूर्वभागमें काशी और प्रयागका वर्णन विस्तारसे दिया गया है। उत्तरभागमें ईश्वर गीता और व्यास गीता हैं। ये दोनों गीताके ढंगकी हैं, परंतु इनके विषय उससे भिन्न हैं।

मत्स्यपुराण

यह बड़ा-महत्वपूर्ण पुराण है। इसमें २९१ अध्याय और १४,००० श्लोक हैं। इसमें पितृवंशका बड़ा विशद वर्णन किया गया है। राजा ययातिकी कथा, श्राद्धवर्णन, सहस्रार्जुनकी कथा, विष्णुको भृगु ऋषिका शाप और दानोंका बड़े विस्तारसे वर्णन—ये भी इस पुराणकी विशेषताएँ हैं। इसमें ऋषियोंकी वंशावलि भी विस्तारसे दी है। राजधर्मका वर्णन बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया है। मूर्तियोंके लक्षण, प्रतिष्ठाविधान आदिका भी वर्णन इसमें है। इनके अतिरिक्त शिवके चरितोंकी भी कथाएँ इसमें आती हैं। धर्मशास्त्रकी ज्ञातव्य बातें इसी पुराणमें मिलती हैं।

गरुड़पुराण

विष्णुने गरुड़से किस प्रकार सृष्टिका वर्णन किया था——इसीका इस पुराणमें वर्णन है। इसमें १९,००० श्लोक हैं। इस पुराणमें भी अग्निपुराणकी भाँति अनेक शास्त्रोंका सुन्दर विवेचन मिलता है। यह अनेक विद्याओंका कोष है। रत्नोंकी परीक्षा, आयुर्वेदके निदान और इलाजोंका वर्णन, राजनीतिवर्णन, छन्द, शास्त्र, सांख्ययोगका वर्णन, गीताका सारांश आदिका विवेचन इसमें अच्छी तरह किया गया है। मृत्युके बाद जीवकी क्या-क्या दशाएँ होती हैं, इसका भी विवेचन इसमें किया गया है। यह पुराण बड़ा महत्त्वपूर्ण है; परन्तु खेद है कि अज्ञानवश इस पुराणको लोग शुभ दृष्टिसे नहीं देखते हैं। यह पुराण ज्ञानका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भण्डार है। विविध विषय इसमें मिलते हैं। अग्निपुराण और गरुड़पुराण——ये दो ही ऐसे पुराण हैं जिनमें सब विषय हैं।

ब्रह्माण्डपुराण

इस पुराणका विषय है——सारे ब्रह्माण्डका विस्तारसे वर्णन। इसमें १२,००० श्लोक हैं। वैसे तो सारे ही पुराणोंमें यह विषय रहता है; परंतु विश्वका जैसा विस्तारसे वर्णन इसमें किया गया है वैसा अन्यत्र नहीं। भूगोलके प्रेमी लोगोंके लिये इसमें बहुत-सी ज्ञातव्य बातें हैं। यदि इसका समझकर अध्ययन किया जाय और आधुनिक भूगोलसे इसकी तुलना की जाय तो सम्भवतः अनेक बातें नयी-नयी भूगोलशास्त्रियोंको इससे मिल सकें।

उपसंहार——

भारतीय संस्कृतिके प्रेमी महानुभावोंके लिये इन पुराणोंमें अनेक बातें बड़े महत्त्वकी हैं। मनुष्यको मनुष्यता प्राप्त कैसे हो सकती है——इसका बहुत अच्छा विश्लेषण इनमें मिल जाता है। इनमें ज्ञानका विपुल भण्डार तो भरा ही है; परंतु साथ ही इनकी सभी कहानियाँ नवयुवक और नवयुवतियोंके लिये अत्यंत शिक्षाप्रद हैं।

इनमें जो विपुल ज्ञानराशि हमारे पूर्वजोंने हमारे लिये संगृहीत की, उसका सदुपयोग कर हमको आजके स्वार्थपरायण मानव-जगतके सामने महान् आदर्श प्रस्तुत करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

आज हमारे आशास्थल नवयुवकोंकी नैतिक भावनाएँ कितनी संकुचित होती जा रही हैं, इसका पता सभीको है। आजके विद्यार्थीमें अनुशासन, गुरुभक्तिके दर्शन भी नहीं होते। इसकी यदि कोई चिकित्सा है तो भारतीय प्राचीन साहित्यका ज्ञान ही है। अधिक नहीं तो, प्रतिदिन आधा घंटा यदि प्रत्येक नवयुवक इन पुराणों, उपनिषदों, गीता और दर्शनोंके अध्ययनमें लगाये तो अवश्य उसका नैतिक धरातल भी शारीरिक और बौद्धिक विकासके साथ-साथ उन्नत हो जाय।

अन्तमें यही निवेदन है कि भारतीय प्राचीन वाङ्मय उस महान् जलाशयके समान है, जिसमें स्वच्छ, शीतल और मधुर जल भरा हुआ हो। एक पथिक प्यासके कारण इधर-उधर भटकता फिरता है; परंतु उस जलाशयको अँधेरेके कारण देखता नहीं है, ठीक उसी तरह हम सुखप्राप्तिके लिये इधर-उधर भटकते फिरते हैं; परंतु हमारे पास जो अथाह ज्ञानका जलाशय है, वह हमको अज्ञानवश धूलिका ढेर प्रतीत हो रहा है। परंतु अब उस जलाशयके उस शीतल और स्वच्छ जलका उपभोग कर हम सच्ची शान्ति लाभ करें——इसका समय आ गया है। इसलिये यदि उस जलाशयके अन्दर गोते लगानेका समय न हो तो भी कम-से-कम कुछ क्षणके लिये उसके तटकी शीतल वायुके सेवनसे ही अपनी आत्माको आप्यायित कर लें।

०—०

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दर्शनशास्त्र

भारतीय दर्शनोंकी उपयोगिता----

भारतवर्षपर सदासे ही प्रकृति देवीकी पूर्ण कृपा रही है। जीवनके उपयोगी पदार्थ यहाँके निवासियोंको अत्यन्त सरलतासे अनायास ही मिलते रहे हैं। उनके लिये इन्हें अधिक कष्ट भोगनेका अवसर ही नहीं आया। यहाँकी भूमि इतनी उपजाऊ थी कि कभी यहाँके निवासियोंके सामने उदरपूर्तिकी समस्या ही नहीं आयी, इसलिये इस जीवनकी चिन्ताओंसे मुक्त हो उन्होंने अपना ध्यान परमार्थ चिन्तनकी ओर लगाया। उसी चिन्तनके फलस्वरूप उन्होंने जिन नित्य, सत्य सिद्धान्तोंको खोज निकाला, वे ही दर्शनके नामसे प्रसिद्ध हो गये। दर्शन शब्दका शाब्दिक अर्थ है, जिसके द्वारा देखा जाय। भारतीय ऋषियोंने अपने चिन्तनसे जिन सत्योंकी खोज करके प्रत्यक्ष देखा, उन्हीं सत्योंको उन्होंने संसारकी भलाईके लिये सारे संसारके सम्मुख प्रस्तुत किया।

सारे प्राणियोंके हृदयमें यह अभिलाषा बनी रहती है कि उन्हें सदा रहनेवाला पूर्ण आनन्द मिले और कभीभी दुःख न भोगना पड़े। उसी भावनासे प्रेरित हो हमारे भारतीय ऋषियोंने उन सत्य सिद्धांतोंको खोजा जो प्राणीमात्रके जीवनको स्थायी शान्ति और सुख प्रदान करनेवाले थे। इस संसारमें जबतक स्वार्थके कीचड़में मनुष्य फँसा रहता है, तबतक वह कभी भी सच्ची शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त नहीं कर सकता। उस सच्ची शान्तिको मनुष्य केवल तुच्छ भोग-जीवनके स्वार्थमय वातावरणसे ऊपर उठकर परमार्थचिन्तनके द्वारा ही पा सकता है। भारतीय दर्शन हमको उसी परमार्थचिन्तनकी ओर लगाते हैं; अतः उनका अध्ययन मनुष्यमात्रके लिये अत्यंत जरुरी है।

आजका मानव जो इतना भोगासक्त होकर स्वार्थी बन रहा है, इसका एकमात्र कारण उसका भारतीय दर्शनोंसे अपरिचय ही है। भारतीय दर्शन भौतिक सुखको सुख नहीं समझते। वे तो मनष्यकी आत्मिक उन्नतिको ही वास्तवमें सुखका साधन बतलाते हैं। आज मनुष्य भौतिक विज्ञानके पीछे इतना पागल बना फिरता है कि उसे सच्चा मार्ग दिखायी ही नहीं पड़ता। फलस्वरूप भोग-सुखकी मृगतृष्णामें भटकता हुआ वह दुःख और संतापसे पीड़ित हो रहा है। इस मायाके प्रपंचमें छुटकारा पानेके लिये एक मार्ग यदि कोई है तो वह भारतीय दर्शनोंका ज्ञान ही है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भारतीय दर्शनोंके भेद——

भारतीय दर्शन वेदका सहारा लेकर ही उत्पन्न हुए हैं तथा हर बातमें उसीको प्रमाण समझते हैं; परंतु कुछ दर्शन ऐसे भी हैं जो वेदोंके वचनोंको प्रमाण नहीं मानते। इस प्रकार वेदोंको प्रमाण माननेवाले दर्शनों को 'आस्तिक दर्शन' कहते हैं और वेदोंके वचनोंको प्रमाण न माननेवाले दर्शन 'नास्तिक दर्शन' कहलाते हैं। इस तरह इस शास्त्रको हम दो वर्गोंमें विभाजित करते हैं। ——

(क) आस्तिक दर्शन

(ख) नास्तिक दर्शन

आस्तिक दर्शन छः हैं ——सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त।

नास्तिक दर्शन तीन हैं—— चार्वाकदर्शन, बौद्धदर्शन और जैनदर्शन।

(१) सांख्य दर्शन——

यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण दर्शन है। इसके सिद्धान्त उपनिषदोंके समयसे ही चले आ रहे हैं। गीता और महाभारतमें तो इसका खूब वर्णन किया गया है। इस दर्शनके प्रवर्तक महर्षि कपिल बतलाये जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने कपिलमुनिको सबसे बड़ा सिद्ध स्वीकार किया है और उनको अपनी ही विभूति माना है। इन कपिलमुनिका नाम शायद ही कोई भारतीय हो, जो न जानता हो। इन्हीं कपिलमुनिने राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंको अपने कोपकी अग्निसे भस्म कर दिया था। पुराणोंमें इनके विषयमें बड़ी-बड़ी कथाएँ आती हैं। श्रीमद्भागवतमें इनका बड़ा सुन्दर उपदेश प्राप्त होता है। इन्हीं कपिलमुनिके चिन्तनसे इस दर्शनका प्रादुर्भाव हुआ है। इस दर्शनकी जो आजकल मुख्य पुस्तक मिलती है, वह है ईश्वर-कृष्णकी बनायी हुई सांख्यकारिका। इसमें आजकल उनहत्तर कारिकाएँ मिलती हैं। यह एक बहुत छोटी-सी पुस्तक है। इसमें केवल ७२ श्लोक हैं।

सांख्य दर्शनका विषय

सांख्य दर्शनके अनुसार २५ तत्त्व माने जाते हैं, जिनके ज्ञानसे मनुष्यमात्र सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा प्राप्त कर सकता है। इन पच्चीस तत्त्वोंके नाम निम्नलिखित हैं——

(१)	पुरुष	१
(२)	प्रकृति	१
(३)	महत्तत्त्व	१
(४)	अहंकार	१
(५)	मन	१
(६)	दस इन्द्रियाँ	१०
(७)	पाँच तन्मात्रा	५
(८)	पाँच महाभूत	५
		२५

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकृति---इसीको सांख्यवाले संसारके सारे पदार्थोंका कारण मानते हैं। उनका कहना है कि उत्पन्न होनेसे पहले भी कार्य कारणमें अव्यक्त रूपमें रहता है, जैसे बीजसे वृक्ष पैदा होता है। वृक्ष है कार्य और बीज है उसका कारण। यदि बीजम अव्यक्त रुपसे वृक्ष न होता तो बीजसे कभी भी वृक्ष पैदा ही नहीं होता। इस तरह कारण और कार्यमें कोई भेद नहीं होता। कार्यकी अव्यक्त अवस्थाका ही नाम कारण है। कारण ही जब प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ने लग जाता ह, तब उसे कार्य कहना प्रारम्भ कर देते हैं। व्यवहारमें चाहे कार्य और कारण भिन्न-भिन्न दिखायी पड़ें, परंतु उनमें वास्तवमें भेद नहीं होता। इसको सांख्यवाले सत्कार्यवादके नामसे पुकारते हैं। प्रकृतिको समझने के लिये हमको संसारके पदार्थोंका निरीक्षण करना चाहिये। इस जगत्के सारे पदार्थ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणवाले हैं। इन गुणोंके बिना दुनियाकी कोई चीज नहीं। उनमें यह समानता पायी जाती है। इसलिये इन सब चीजोंका मूल कारण कोई एक ही तत्त्व है, जिसे प्रधान, अव्यक्त या प्रकृतिके नामसे पुकारा जाता है। इस प्रकृतिसे महत्तत्त्व पैदा होता है। प्रकृति जड़ तथा एक ही है।

महत्तत्त्व---प्रकृतिका पहला विकार महत्तत्त्व है। इसीको बुद्धि भी कहा जाता है। इसी बुद्धिमें मनुष्यकी सारी स्मरणशक्ति और संस्कार रहते हैं। बुद्धिके द्वारा ही मनुष्य किसी निश्चयतक पहुँच सकता है, इसलिये निश्चय बुद्धिका कार्य है।

अहंकार---इस बुद्धिसे अहंकार पैदा होता है। यह तीसरा तत्त्व है। कुछ लोगोंका कहना है कि तत्त्वोंकी गणना करनेके कारण ही इसे सांख्य कहा जाता है। अहंकारके कारण मनुष्य-मनुष्यमें भेद किया जाता है।

विकार--दस इन्द्रियाँ, मन और पाँच तन्मात्राएँ----- अहंकारसे दस इन्द्रिय (पाँच ज्ञानेन्द्रिय--नेत्र, कान, नाक, जीभ और त्वचा तथा पाँच कर्मेन्द्रिय--वाक्, हाथ, पैर, गुदा और जननेन्द्रिय), मन और पाँच तन्मात्रा (शब्द-तन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रस-तन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा) की उत्पत्ति होती है। अहंकार दो प्रकारका है----तामस और सात्त्विक। तामस अहंकारसे तन्मात्राएँ पैदा होती हैं और सात्त्विक अहंकारसे इन्द्रियाँ और मन पैदा होते हैं।

पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)----पाँच तन्मात्राओंसे पाँच महाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। शब्दतन्मात्रासे आकाश, स्पर्शतन्मात्रा और शब्दतन्मात्रासे वायु—इन दोनों और रूपतन्मात्रासे तेज और रसतन्मात्राके साथ इन तीनोंसे जल और इन पाँचों तन्मात्राओंसे पृथ्वी पैदा होती है। तन्मात्राएँ भूतोंके सूक्ष्मतम रूप ही हैं। तन्मात्राएँ ही बढ़कर महाभूत बन जाती हैं। इन सब महाभूतोंके पृथक्-पृथक् गुण हैं। आकाशका गुण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

केवल शब्द है। वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं। तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण हैं। जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार गुण हैं और पृथ्वीमें चारों गुणोंके साथ पाँचवाँ गन्ध भी रहता है।

पुरुष——जीवात्माको यह दर्शन पुरुषके नामसे पुकारता है। पुरुष चेतन और अनेक हैं। प्रकृतिके समान पुरुष भी अनुमानसे सिद्ध किया जाता है। सांख्यवाले पुरुष (जीव) की सिद्धिमें पाँच कारण बतलाते हैं।

प्रथम कारण——जिस प्रकार किसी घरमें हम जाते हैं और वहाँपर खाट पड़ी हुई देखते हैं तो हम उसे देखकर यह अनुमान लगा लेते हैं कि कोई-न-कोई आदमी जरूर इस खाटपर सोनेवाला घरमें रहता होगा, वैसे ही महत्तत्त्व और अहंकार आदि पदार्थोंको देखकर हम यह अनुमान कर लेते हैं कि ये पदार्थ अवश्य किसी-न-किसीके लिये होंगे। ये जिसके लिये होंगे वही पुरुष है।

दूसरा कारण——जिस प्रकार ब्राह्मण नाम तभी सार्थक है जब उससे भिन्न लोग भी हों, उसी प्रकार संसारके पदार्थोंका त्रिगुणमय होना गुणहीन पुरुषका होना सिद्ध करता है।

तीसरा कारण——सुख–दुःख आदि धर्मोंका स्थान कोई जरूर होगा जिसमें ये रहते होंगे। बस, वही पुरुषके नामसे पुकारा जाता है।

चौथा कारण——बुद्धि आदि सारे पदार्थ दृश्य हैं। उनका देखनेवाला कोई-न-कोई जरूर होगा। बस, वही पुरुष है।

पाँचवाँ कारण——मुक्तिके लिये लोगोंमें प्रवृत्ति देखी जाती है। वह मन, बुद्धि आदि जड़ पदार्थोंकी हो नहीं सकती; अतः चेतन पुरुषको मानना ही पड़ेगा।

वह पुरुष शरीर, इन्द्रिय और मनसे अलग है। वह बुद्धि और अहंकारसे भी भिन्न है, वह सदा चैतन्यरूप है। प्रकृति और उसके विकार सभी जड़ हैं। अपनेको प्रकट करनेके लिये उनको पुरुषके प्रकाशकी जरूरत रहती है। पुरुषका कोई कारण नहीं है और न उससे कोई पैदा होता है। वह न प्रकृति (कारण) है और न विकार (कार्य) है। पुरुष नित्य है। सर्वव्यापक है। उसमें कोई भी चलना-फिरना आदि क्रियाएँ भी नहीं हैं। उसमें सत्त्व, रज और तम——इन तीनों गुणोंका भी सम्बन्ध नहीं है। वह चैतन्यरूप है। प्रेम, वैर और खिन्नता आदि पुरुषके स्वाभाविक धर्म नहीं हैं। प्रकृति के सम्बन्ध से पुरुषमें ये दिखायी पड़ते हैं।

पुरुषमें गति भी नहीं है। मुक्ति होनेपर वह न कहीं आता है और न कहीं जाता है। पुरुषमें यदि सुख और दुःख आदि धर्म मान लिये जायें तो फिर उसकी मुक्ति कभी सम्भव ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न हो। कोई भी संसारमें कभी अपने स्वाभाविक कर्मको नहीं छोड़ा करता। इसलिय सुख और दुःख आदि वास्तवमें बुद्धिके धर्म हैं। पुरुषकी मुक्तिसे भी अभिप्राय यही है कि उसका प्रकृतिसे सम्पर्क छुट जाता है।

सांख्य दर्शनमें पुरुष एक नहीं माना गया है। इसका उसने लोकका प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है। यदि पुरुष एक ही होता तो एक व्यक्तिके मरनेपर सभी व्यक्तियोंकी मृत्यु हो जानी चाहिये तथा एकके जन्म लेते ही सबकाजन्म हो जाना चाहिये, परंतु ऐसा होता नहीं है, अतः यह सिद्ध होता है कि पुरुष (जीव) एक नहीं है किन्तु अनेक हैं। संसारमें सबका स्वभाव भी एक-सा नहीं होता, इससे भी यही प्रमाणित होता है कि पुरुष अनेक ही हैं।

रचनाका क्रम

प्रकृति और पुरुषके संयोगसे ही सृष्टिकी रचना होती है। न केवल प्रकृति सृष्टिकी रचना करनेमें समर्थ है; क्योंकि वह जड़ है। न केवल पुरुष ही सृष्टिकी रचना कर सकता है; क्योंकि वह निष्क्रिय है। अतः सृष्टिकी रचनाके लिये दोनोंका संयोग अत्यंत जरूरी है। जैसे अन्धा और लँगड़ा दोनों मिलकर परस्परके सहयोगसे मार्ग पार कर सकते हैं। अन्धेको दीखता नहीं है और लँगड़ा चल नहीं सकता है, इसलिये अन्धा लँगड़ेको कंधेपर बैठा लेता है तो दोनोंका काम बन जाता है। लँगड़ा मार्ग दिखा देता है और अन्धा उसे ले जाता है। ठीक इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष दोनों मिलकर सृष्टिकी रचना कर डालते हैं। पुरुषके संयोगमें जड़ प्रकृति किस प्रकार महत्तत्त्व (बुद्धि) को पैदा करती है तथा उससे अहंकार आदि उत्तरोत्तर किस प्रकार पैदा होते हैं, यह तो पहले बतलाया ही जा चुका है। सृष्टिकी उत्पत्ति निम्न-लिखित तालिकासे स्पष्ट हो जायगी —

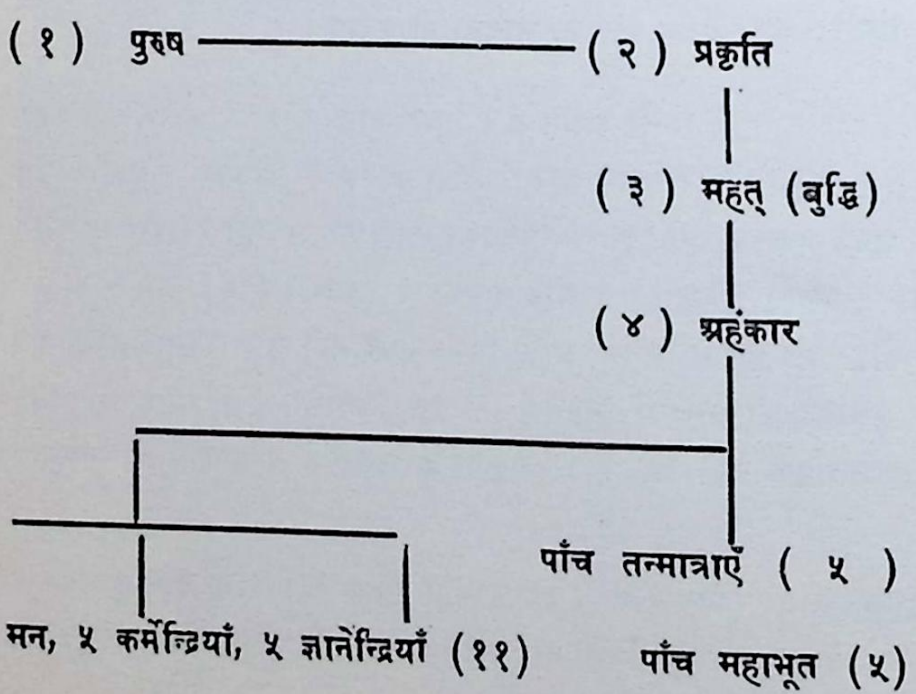

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सांख्यवाले द्रव्य तथा गुणमें कोई अन्तर नहीं मानते हैं। इनको वे पंचमहाभूतोंकी दो अवस्थाएँ मानते हैं। पहली अवस्था में ये अत्यन्त सूक्ष्म तन्मात्राओंके रूपमें रहते हैं और दूसरी अवस्थामें तन्मात्राएँ आपसमें मिलकर स्थूल महाभूतोंका रूप धारण कर लेती हैं। इन पांच महाभूतोंमें भी आकाशकी अपेक्षा वायु अधिक स्थूल, वायुसे अग्नि अधिक स्थूल, अग्निसे भी जल स्थूल और पृथ्वी सबसे स्थूल है। इस तरह इन स्थूल भूतोंके संयोगसे यह सारी स्थूल सृष्टि बनती है। प्राणियोंके कर्मोंकी फलोत्पत्तिका जब समय आता है, तब सृष्टि पैदा होती है।

मुक्ति---सांख्य दर्शनके अनुसार पुरुष स्वभावसे ही असंग और मुक्त है; परंतु अविवेकके कारण वह प्रकृतिके संसर्गसे बन्धनमें फँस जाता है प्रकृतिके साथ पुरुषका जब संयोग होता है, तब प्रकृतिसे उत्पन्न दुःखका पुरुषमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। बस, वही पुरुषके लिये दुःख-भोग-संसार है। इसलिये अविवेक ही संसारका कारण ठहरता है, और विवेक ही दुःख निवृत्तिका कारण है। पुरुष और प्रकृतिका अलग-अलग हो जाना या अकेला हो जाना ही मुक्ति है। वास्तवमें बन्धन और मुक्ति सांख्यके अनुसार प्रकृतिके धर्म हैं। पुरुष तो असंग और मुक्त है,। प्रकृतिके संयोगसे उसमें इनका प्रतिबिम्ब पड़ता है और वह भी बन्धनमें बँधा हुआ या मुक्त दिखायी पड़ता है। इसलिये पुरुषकी मुक्तिसे मतलब यही है कि वह विवेकसे अपनी स्वतंत्र, असंग कैवल्य दशाको प्राप्त कर लेता है। पुरुष शरीर और मनके ऊपर है। बन्धनोंसे रहित है। न वह कभी मरता है, उसमें न कोई परिवर्तन होता है। वह तो सदा रहनेवाला सत् पदार्थ है। यह जान लेना ही बस कैवल्य है। इसलिये व्यक्त, अव्यक्त तथा तत्त्वज्ञानसे विवेक होता है और उसका फल है सारे दुःखोंकी निवृत्ति। इसी दशामें पुरुष कृतकृत्य होता है। इस हालतमें प्रकृतिका व्यापार स्वतः समाप्त हो जाता है। जब मुक्ति मिल गयी, तब प्रयोजनके अभावमें उसका विराम होना अत्यंत स्वाभाविक है। जैसे रसोइया तभीतक काम में लगा रहता है, जबतक वह भोजनका कार्य समाप्त नहीं कर लेता, परन्तु जहाँ भोजनका काम समाप्त हुआ कि अपने-आप उसका काम बंद हो जाता है।

प्रकृति उस नाचनेवाली स्त्रीके समान है जो अपना नाच दर्शकोंको दिखलाकर अपने-आप नाचनेसे हट जाती है। प्रकृति बड़ी लजीली है। वह पुरुषके द्वारा अनुभूत होनेपर फिर उसके सामने नहीं आती। इस प्रकार विवेक होनेपर पुरुषके लिये प्रकृतिका कोई काम ही नही, रहता। उस हालतमें उसे यह ज्ञान हो जाता है कि मैं स्वभावसे ही निष्क्रिय हूँ, मुझमें कर्तापन नहीं है और न किसीके साथ मेरा सम्बन्ध ही है। इस मुक्तावस्थाकी प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य इसी जीवनमें पा सकता है।

सांख्य दर्शनके अनुसार मुक्त दो तरहकी है --जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। विवेक हो जानेपर मनुष्य इसी जन्ममें जिस मुक्तिका अनुभव करता है, उसे जीवन्मुक्ति कहते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं। जीवन्मुक्त कार्य करनेसे विरत नहीं होता, वह अनासक्त रुपमें कर्मोंको करता रहता है। विशेषता इतनी है कि अब वे कर्म बन्धन नहीं पैदा करते । जैसे डंडेके रा घुमाया हुआ, कुम्हारका चक्र डंडेका व्यापार समाप्त होनेपर भी कुछ समयके लिये घुमता ही रहता है, उसी प्रकार जीवन्मुक्ति हो जानेपर भी अभ्यासवश आरब्ध कर्म चलते ही रहते हैं। शरीरके नाश होनेपर जब मनुष्य तीनों प्रकारके दुःखोंसे रहित हो जाता है, तब उसे 'विदेह-मुक्त' कहा जाता है। तीनों प्रकारके दुःखोंसे छूट जाना ही इनके मतमें- मुक्ति है । ये आनन्दप्राप्ति को मुक्ति नहीं मानते।

ईश्वर

सांख्यवाले जगतकी रचना और कर्मोंका फल देनेके लिये ईश्वरकी सत्ता माननेके लिये तैयार नहीं हैं। इसलिये यह दर्शन निरीश्वरवादी दर्शन कहलाता है। अन्य दार्शनिक सिद्धान्तोंसे इसकी यही विशेषता है। बादके आचार्योंने ईश्वरकी सत्ता भी स्वीकार की है; परन्तु प्रारम्भिक आचार्योंने ईश्वरकी सत्ता माननेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने कहा——'ईश्वरकी सिद्धि नहीं की जा सकती'।

२) योग दर्शन——

भारतीय दर्शनोंमें योग दर्शनका बड़ा महत्त्व है। यह भारतीय जनताकी सबसे पुरानी सम्पत्ति है। अन्य दर्शनोंके समान इसके विषयमें कोई विवाद नहीं है। इसके सिद्धान्तोंको सभीने एकस्वरसे स्वीकार किया है। यही सबसे श्रेष्ठ मुक्तिका साधन है। योगकी महत्ताको सभी दार्शनिकोंने माना है। इसका विवेचन भी अपनी-अपनी विचारधाराके अनुसार विभिन्न आचार्योंने अनेक प्रकारसे किया है। बौद्धग्रन्थों, जैनग्रन्थों और अन्यान्य मतोंके ग्रन्थोंमें भी योगकी भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओंका वर्णन किया गया है।

यह सबसे प्राचीन दर्शन है। वेदों, आरण्यकों और उपनिषदोंमें भी इसका खूब वर्णन किया गया है। यह प्राणविद्याके नामसे प्रसिद्ध था। पुराणोंमें भी इस विषयकी बड़ी सामग्री भरी पड़ी है। आजतक भी योगविद्याके अभ्यास करनेवाले कई पुरुष भारतमें मिल जाते हैं, इसपर जितने ग्रन्थ लिखे गये, शायद ही उतने किसी अन्य दर्शनपर लिखे गये हों। सभी धर्मोंने इसको खूब अपनाया। इस प्रकार इसका सबसे अधिक प्रचार हुआ।

इस दर्शनके सर्वप्रथम आचार्य महर्षि पतंजलि माने जाते हैं। ये पतंजलि विद्याके सागर थे। ये सभी विषयोंके प्रकाण्ड पण्डित थे। योगविद्यामें जैसे इन्होंने योग दर्शनकी रचना की, इसी प्रकार व्याकरणमें इन्होंने एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया, जिसका नाम 'महाभाष्य' है। आयुर्वेदमें भी इनकी विद्वता अद्वितीय थी। 'चरकसंहिता' के रचयिता भी इन्हें ही

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बतलाते हैं। इस तरह महर्षि पतंजलिने सबसे पहले इसपर ग्रंथ-रचना की। बादमें तो अनेक विद्वानोंने इसपर अनेक ग्रन्थ बनाए।

योग दर्शनका विषय

योगका अर्थ है—चित्तवृत्तिका पूर्णरूपसे निरोध। चित्तसे यहाँपर अभिप्राय मन, बुद्धि और अहंकारसे है। सत्त्वगुणयुक्त प्रकृतिसे चित्तकी उत्पत्ति होती है; अतः प्रकृतिके विकारोंमें सबसे अधिक सत्त्वगुणी चित्त ही है। प्रकृतिके धर्म जड़ता और परिवर्तनशीलता चित्तमें भी रहते है। चित्त तीन प्रकारका होता है—सत्त्वप्रधान, रजःप्रधान और तमोगुणप्रधान।

चित्तकी अवस्थाएँ

चित्तकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। मूढ़ चित्त विवेकसे रहित रहता है और मोहमें फँसा रहता है। इसमें तमोगुणकी प्रमुखता रहती है। क्षिप्तका अर्थ चंचल होता है, इसलिये क्षिप्त दशामें मन डावाँडोल रहता है और सुख-दुःख आदिमें फँसा रहता है। इस दशामें रजोगणकी प्रधानता रहती है। विक्षिप्त दशामें चित्त सुखके साधनोंकी ओर अधिक झुका रहता है। पर यह बीचकी दशा है। इसमें दोनों ओर मन जाता है। इसमें सत्त्वकी प्रधानता है। एकाग्र और निरुद्ध चित्त सत्त्वगुणकी अधिकताके कारण समाधिमें अधिक उपयोगी है। जब बाहरी वृत्तियोंसे हटकर चित्त एक वस्तुपर एकाग्र हो जाता है, तब उसे एकाग्र कहते हैं। सब वृत्तियों और संस्कारोंका सर्वथा निरोध हो जानेपर चित्तको निरुद्ध कहा जाता है। पहली तीन दशाओंमें चित्त योगके लायक नहीं रहता है। अन्तकी दो दशाएँ ही योगके-योग्य हैं।

चित्तकी वृत्तियाँ

पुरुषको किसी वस्तुके स्वरूपका ज्ञान चित्तके जिन परिवर्तनोंसे होता है, उन्हें वृत्तियाँ कहते हैं। ये पाँच हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रमाण तीन तरहका होता है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। प्रमाणका अर्थ है—सच्चा ज्ञान। किसी चीजके झूठे ज्ञानको विपर्यय कहा जाता है। इसे संशय भी कहा जाता है। शब्दके ज्ञानमात्रसे पैदा होनेवाले परन्तु वस्तुकी वास्तविकतासे शून्य ज्ञानको विकल्प कहते हैं, जैसे यदि किसीने हमसे कहा—'गधेके सींग'। इन शब्दोंसे अर्थ तो निकलता है, परन्तु वास्तविकता इसमें बिलकुल ही नहीं है। तमकी अधिकताके सहारे रहनेवाली वृत्तिको निद्रा कहा जाता है। अनुभव किये हुए विषयोंका बिना परिवर्तन ठीक उसी रूपमें याद आना स्मृति कहलाता है। ये चित्तकी सारी अवस्थाएँ इन्हीं पाँच वृत्तियोंमें आ जाती हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संस्कार

जब चित्तकी वृत्तियाँ पैदा होकर चित्तमें ही विलीन हो जाती हैं, तब वे बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाती हैं; बल्कि सूक्ष्म रूपमें रह जाती हैं। बस, वृत्तियोंके इसी सूक्ष्म रूपको संस्कार कहा जाता है। ये संस्कार ही समयपर स्थूल रूप धारण कर लेते हैं और वृत्तियाँ बन जाती हैं। इस प्रकार वृत्तियों और संस्कारोंका आपसमें गहरा संबंध है। वृत्तियोंसे संस्कार और संस्कारोंसे वृत्तियाँ पैदा होती हैं। जैसे वृक्षके काट देनेपर पृथ्वीमें उसकी जड़ रह जाती है और वही समयपर फिर हरी-भरी होकर वृक्षका रूप धारण कर लेती है। पुनः वृक्षके काट देनेपर जड़ें ही रह जाती हैं; वैसे ही वृत्तियों और संस्कारोंका चक्र चलता रहता है। इन्हीं संस्कारोंको योगके द्वारा रोका जाता है।

योगके भेद

योगके दो भेद हैं——सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। जिस समय अन्य वृत्तियोंके क्षीण होनेपर चित्त एकाग्र दशामें एक वस्तुके निरन्तर ध्यानमें लीन हो जाता है, तब सम्प्रज्ञात योग कहलाता है। इससे प्रज्ञाका उदय होता है। अन्य वृत्तियोंके रोकनेसे उत्पन्न प्रज्ञाको भी आखिर रोकना आवश्यक है। यह प्रज्ञा भी तो चित्तकी एक वृत्ति ही है। इसके रोकनेपर ही सब वृत्तियाँ रुकती हैं। बस, इसको रोक लेनेपर ही असम्प्रज्ञात योग होता है। इस प्रकार शेष वृत्तियोंको रोककर एक वस्तुमें चित्त को लीन करना सम्प्रज्ञात योग कहलाता है और सभी वृत्तियोंसे चित्तको रोक लेना असम्प्रज्ञात योग कहलाता है।

क्लेश

योगदर्शनका भी लक्ष्य क्लेशोंको दूर करना ही है। ये क्लेश चित्तमें दिन-रात भरे ही रहते हैं, जिससे चित्त कभी एकाग्र हो ही नहीं सकता। इनके हटने पर चित्त योगमार्गपर अग्रसर हो सकता है। ये सब विघ्नरूप हैं, परंतु ये भी अज्ञानसे ही उत्पन्न होते हैं; इसलिए ये मिथ्या ज्ञानरूप ही है। इनकी स्थिति वास्तविक नहीं है। ये क्लेश पाँच हैं——अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। अनित्य वस्तुको नित्य, अपवित्रको पवित्र, दुःखको सुख और जो आत्मा नहीं है, उसे आत्मा समझना ही 'अविद्या' कहलाता है। यही अविद्य सारे क्लेशोंको पैदा करती है। पुरुष तथा बुद्धिको एक मान लेना 'अस्मिता' (अहंभाव) है। सुख पैदा करनेवाली चीजोंके प्रति जो लोभ होता है, उसे 'राग' कहा जाता है। इसमें विपरीत भावको या किसी दूसरे पुरुषके अहितकी भावनाको 'द्वेष' कहते हैं। मौतके डरको 'अभिनिवेश' कहा जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

योगके अङ्ग

इन क्लशोंकी निवृत्तिका साधन है——विवेक। विवेक प्राप्त करनेके लिये पतंजलिने योगके आठ अंग बतलाये हैं। वे आठ अंग ये हैं——

(१) यम
(२) नियम
(३) आसन
(४) प्राणायाम
(५) प्रत्याहार
(६) धारणा
(७) ध्यान
(८) समाधि

(१) यम——यमका अर्थ है संयम। ये पाँच प्रकारके होते हैं——अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। अहिंसाका अर्थ है कभी किसी प्राणीका बुरा न करना। सत्यका अर्थ है मन और वचनका यथार्थ होना अर्थात् जो चीज जैसी हो उसे उसी रूपमें प्रकट करना। अस्तेयका अर्थ है दूसरेकी वस्तुकी इच्छा न करना। ब्रह्मचर्यका अर्थ है इन्द्रियोंको वश में रखना। अपरिग्रहका अर्थ है विषयोंका संग्रह न करना अर्थात परित्याग कर देना।

(२) नियम——नियम भी पाँच हैं——शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। शौचका अर्थ है शरीर और मनको शुद्ध रखना। संतोषका अर्थ है जीवन-निर्वाहके लिये अपेक्षित वस्तुओंसे अतिरिक्त वस्तुओंकी इच्छा न करना। तपका अर्थ है सुख तथा दुःख, शीत और गरमी, भूख और प्यास आदिको सहनेकी ताकत प्राप्त कर लेना। स्वाध्यायका अर्थ है मोक्षके उपयोगी शास्त्रोंको पढ़ना। ईश्वर-प्रणिधानका अर्थ है सारे कर्मोंको भक्ति-पूर्वक ईश्वरको समर्पण कर देना।

(३) आसन——बैठनेके तरीकोंको आसन कहा जाता है। ध्यानके लिये साधक-को ऐसे आसनोंकी अत्यंत आवश्यकता है जिनसे उसके चित्तको शान्ति और सुख मिले। ये आसन बहुत-से हैं।

(४) प्राणायाम——श्वास तथा प्रश्वासकी गतिको रोकनेका नाम प्राणायाम है। प्राणायाम भी चार प्रकारके होते हैं——रेचक, पूरक, कुम्भक और केवल कुम्भक। प्राणा-यामके अभ्याससे चित्त एकाग्र हो जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(५) प्रत्याहार——जब इन्द्रियाँ बाह्य विषयोंसे हटकर चित्तके समान रोक ली जाती हैं, तब वह प्रत्याहार कहलाता है। इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाना ही प्रत्याहारका कार्य है। उपर्युक्त पाँचों योगके बाहरी साधन हैं।

धारणा——किसी वस्तुपर चित्तको लगा देना धारणा कहलाता है। प्राणायामसे वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंके रोक लेनेपर चित्तको एकाग्र करना सरल हो जाता है।

ध्यान——ध्यान करनेवाला जब उस ध्येय वस्तु से अपने चित्त की सर्वथा एकाकारता अनुभव करने लगता है, तब उसे ध्यान कहा जाता है।

समाधि——विक्षेपोंसे हटाकर चित्तको निरुद्ध करना समाधि कहलाता है। इसके कई भेद हैं——सबीज, सम्प्रज्ञात सविकल्प निर्बीज-असम्प्रज्ञात, निर्विकल्प आदि। इन आठों योग के अंगोंको सिद्ध करनेके लिये सदाचारका अभ्यास नितान्त आवश्यक है। संयमके अभिलाषी मनुष्यको अहंकार पूर्ण प्रवृत्तियोंको दबाकर उनके ऊपर उठ जाना चाहिए। ये प्रवृत्तियाँ ही सारे बुरे कामोंकी कारण हैं। इस प्रकार आसक्तिरहित प्रवृत्तिसे ही वैराग्यकी प्राप्ति होती है।

मुक्ति

अन्य दर्शनोंकी भाँति इस दर्शनका भी लक्ष्य मुक्ति ही है। इन संयमोंके अभ्याससे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। पतञ्जलिने इन योगके अंगोंके अभ्यासके साथ मुक्तिके लिये ईश्वर की भक्तिको भी आवश्यक माना है। योगके अनुसार मुक्त पुरुष करुणाका सागर बन जाता है। वह प्राणिमात्रको अपने ही समान देखता है। सारे संसारके भोग्य-पदार्थोंसे उसे वैराग्य हो जाता है और फलस्वरूप साधकको जगत्में पुनः आना नहीं पड़ता। गुणोंमें भी उसका वैराग्य पैदा हो जाता है, इसलिये वह गुणोंके बंधनोंसे छूट जाता है। इस वैराग्यके उत्पन्न होनेपर असम्प्रज्ञात-समाधिका जन्म होता है। उस समय उसे सिद्धियाँ भी आकृष्ट करती हैं; परंतु वैराग्य उनकी ओर जानेसे साधकके चित्तको रोकता है। बस, जब साधक सिद्धियों-को पार कर जाता है, तब वह मुक्त हो जाता है।

योगी

योगी भी चार तरहके होते हैं——प्रथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अति-क्रांतभावनीय। प्रथमकल्पिक योगी वह है, जो उपर्युक्त योग के आठ अङ्गोंसे युक्त होकर योगमार्गमें प्रवेश ही करता है। मधुभूमिक योगीका चित्त अत्यंत शुद्ध हो जाता है। देवता, अप्सरा आदि उसे प्रलोभनमें डालनेकी चेष्टा करते हैं, परंतु उस समय उसे अहंकारको सर्वथा-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्यागदेना चाहिये। प्रज्ञाज्योति योगी भूतविजयी और इन्द्रियविजयी हो जाता है। भूतोंपर विजय कर लेनेपर योगी सब सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। इसके बाद परम वैराग्यके साथ तीनों गुणोंको जीतकर योगी दिखनेवाले और चिंतन करने लायक सब पदार्थोंकी सीमा पार कर परमपदमें स्थित हो जाता है। इस दशाको अतिक्रांत-भावनीय कहते हैं। योगी की यही अंतिम अवस्था है।

ईश्वर

योग दर्शनमें सांख्य दर्शनसे यही विशेषता है कि यह ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार करता है। क्लेश, कर्मफल और संस्कारोंसे मुक्त पुरुषविशेषको ईश्वर कहा जाता है। यह ईश्वर सदा ही कर्मोंके बन्धनोंसे मुक्त रहता है। योगसाधनमें ईश्वर अत्यंत उपयोगी है।

उपसंहार

योग भारतकी विशिष्ट सम्पत्ति है। इसका यहाँपर बड़ा भारी अनुशीलन हुआ है और उन्नतिके शिखरपर पहुँचा दिया गया है। यह अध्यात्ममार्गके पथिकोंके तो अत्यंत कामकी वस्तु है ही; परंतु शारीरिक विकासके लिये भी इसकी क्रियाएँ नितान्त उपयोगी हैं। इसे पश्चिमने भी खूब अपनाया है। वास्तवमें अन्य दर्शनोंसे यह ज्यादा सर्वसाधारणके लाभकी चीज है। यौगिक क्रियाओंका अभ्यास प्रत्येक बालकके लिये अत्यंत जरूरी है।

न्याय दर्शन——

न्याय दर्शनकी उपयोगिता———भारतीय दर्शनके विद्वानोंमें इस दर्शनको बड़े सम्मानके साथ देखा जाता है। इसका एकमात्रकारण यह है कि यह दर्शन सभी बातोंको तर्ककी कसौटी-पर कसकर उन्हें स्वीकार करता है। सर्वप्रथम जाननेकी बात यह भी है कि वैदिक धर्मका सच्चा रूप जाननेके लिये न्याय दर्शन अत्यंत जरूरी है। यह न्याय दर्शन एक प्रकारसे उस दीपकके समान है जो सारी वस्तुओंको प्रकाशित कर देता है। न्याय दर्शनका भी उद्देश्य तर्कके सहारे धर्मको स्थापित करना है। न्याय दर्शनके अनुयायी विद्वानोंने ही विरोधियों की बातोंका उत्तर देकर वैदिक सिद्धान्तकी रक्षा की, इसलिये इस दर्शनकी उपादेयता सभीको माननी पड़ती है।

न्यायका अर्थ———न्यायका अर्थ है अनेक प्रमाण देकर किसी चीजके वास्तविक तत्त्वकी परीक्षा करना और यही इस दर्शनका मुख्य उद्देश्य है। प्रमाणोंका जितना विस्तारसे विवेचन इस दर्शनमें हुआ है, उतना अन्य दर्शनोंमें नहीं। उन प्रमाणोंमें भी अनुमान प्रमाणपर इस दर्शनमें बड़ा विवेचन हुआ है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसके प्रवर्तक——न्याय दर्शन वैसे तो बहुत प्राचीन दर्शन है और इसमें जो विषय हैं, उनका वर्णन उपनिषदोंमें भी मिलता है; परंतु इस दर्शनको चलानेवाले ऋषिका नाम गौतम है। इनके ग्रंथका नाम 'न्याय दर्शन' है। उसमें पाँच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें दो-दो आह्निक हैं। प्रत्येक आह्निकमें करीब पचास या साठ सूत्र हैं। कुल मिलाकर ५२८ सूत्र हैं। इस प्रकार यह ग्रंथ दिखनेमें एक बहुत छोटा-सा है। परंतु विषय की दृष्टिसे इसका बड़ा महत्त्व है। इस पुस्तक पर वात्स्यायनकी टीका है, जिसमें इन सूत्रोंका अर्थ बड़े विस्तारके साथ समझाया है। इस प्रकार इस दर्शनकी परम्परा इस देशमें सैकड़ों वर्षोंसे चली आ रही है।

इसके भेद———

इस दर्शनमें आजकल दो भेद हो गये हैं। उनके नाम है——नव्य न्याय और प्राचीन न्याय। बात यह है कि विक्रमकी बारहवीं शताब्दीमें इस दर्शनके एक बहुत बड़े पण्डित मिथिलामें हुए थे, जिनका नाम गंगेश था। उन्होंने अनुमानपर ही बहुत अधिक बल दिया और उसीपर 'तत्त्वचिन्तामणि' नामका एक ग्रन्थ बनाया, जिससे न्याय दर्शनके एक ही प्रकरणपर बादमें ग्रन्थोंकी रचना होने लगी। उसपर जो ग्रंथ रचे गये, वे नव्य न्यायके नामसे प्रसिद्ध हो गये। उन ग्रन्थोंमें केवल अनुमानपर ही खूब वाद-विवाद प्रस्तुत किया गया हैं। आजके पण्डितोंमें उनका बड़ा सम्मान है। खास तौरसे बिहार और बंगालमें इस नव्य न्यायका प्रचार बहुत अधिक है। साथ-ही-साथ प्राचीन न्याय भी चलता रहा है, जिसके साथ वैशेषिक दर्शनके सिद्धांत भी मिल गये हैं। न्याय और वैशेषिक दर्शन दोनों मिले-जुले दर्शन ही है। कुछ थोड़ा-सा ही दोनों में अंतर है।

न्याय दर्शनका विषय——

अन्य दर्शनोंकी भाँति न्यायका भी अन्तिम लक्ष्य मुक्ति ही है। वह मुक्ति प्राप्त होती है सोलह पदार्थोंके तत्वको जान लेनेसे। उन सोलह पदार्थोंके नाम निम्नलिखित हैं——

१. प्रमाण
२. प्रमेय
३. संशय
४. प्रयोजन
५. दृष्टान्त
६. सिद्धान्त
७. अवयव
८. तर्क
९. निर्णय

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१०. वाद
११. जल्प
१२. वितण्डा
१३. हेत्वाभास
१४. छल
१५. जाति
१६. निग्रहस्थान

प्रमाण

वास्तवमें जिस प्रकार दीपक सब वस्तुओंको प्रकाशित करता है उसी प्रकार बुद्धि (ज्ञान) सब पदार्थोंको प्रकाशित करती है। वह ज्ञान रहता है आत्मामें। ज्ञान दो प्रकारका है--स्मृति और अनुभव। संस्कारके कारण कभी कभी पहले अनुभव किये हुए पदार्थोंका किसी समान पदार्थके देखनेपर ज्ञान हो आता है। उसीका नाम है स्मृति। स्मृतिसे भिन्न जो ज्ञान होता है, उसे अनुभव कहते हैं। यह अनुभव भी दो तरहका है--यथार्थ (सच्चा) और अयथार्थ (झूठा)। यथार्थ ज्ञानको प्रमा भी कहा जाता है और अयथार्थ ज्ञानको अप्रमा। जिसके द्वारा ज्ञानकी यथार्थताका निर्णय हो सके, उसे ही प्रमाण कहा जाता है।

प्रमाणके भेद ---

प्रत्यक्ष--प्रमाण चार प्रकारका होता है--प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंके साथ संयोग होनेपर जो ज्ञान पैदा होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। आत्माके अन्दर प्रत्यक्ष ज्ञान पैदा होनेके लिये तीन तरहका संयोग जरूरी है। सबसे पहले आत्माका मनके साथ सम्बन्ध होता है। तब मन जाकर इन्द्रियोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता है और इन्द्रियोंका विषय (वस्तु) के साथ सम्बन्ध होता है। इस प्रकार आत्माको किसी विषयका प्रत्यक्ष ज्ञान मन और इन्द्रियोंकी सहायतासे होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान भी दो तरह का होता है--निर्विकल्पक और सविकल्पक। सबसे पहले जब इन्द्रियोंके साथ किसी वस्तुका संयोग होता है, तब केवल 'कोई चीज है' यही ज्ञान होता है। उसके नाम आदिका ज्ञान नहीं होता। उसे निर्विकल्पक प्रत्यक्ष कहा जाता है। कुछ समय पश्चात् जब उस वस्तुका सारा विवरण प्रस्तुत हो जाता है, तब उसे सविकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञानकी साधन पाँच इन्द्रियाँ हैं। इसलिये नेत्रसे होनेवाले प्रत्यक्षको चाक्षुष, कानोंसे होनेवाले प्रत्यक्षको श्रावण, त्वचासे होनेवाले प्रत्यक्षको स्पार्शन जिह्वासे होनेवालेको रासन और नासिका-से होनेवालेको घ्राणज कहते हैं। इन्द्रियोंके साथ विषयका जो संयोग होता है, वह भी छः तरहका होता है---

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(१) संयोग, (२) संयुक्त समवाय, (३) संयुक्त समवेत समवाय, (४) समवाय, (५) समवेत समवाय, और (६) विशेषण-विशेष्य-भाव।

अनुमान——किसी हेतुके ज्ञानसे इस हेतुको धारण करने वाली वस्तुके ज्ञानको अनुमान कहा जाता है। न्याय दर्शनमें अनुमानका उदाहरण यह दिया जाता है—'यह पहाड़ धूमवाला होनेके कारण आगवाला है। जहाँ धूम होता है वहाँपर अग्नि जरूर होती है, जैसे रसोईघर।' उसको इस प्रकार समझना चाहिये कि कोई मनुष्य प्रतिदिन रसोईघरमें अग्नि जलाता है और उसके साथ धुआँ भी रोज देखता है। उसको रोज-रोज धूमके साथ आग देखनेसे पक्का निश्चय हो गया है कि जहाँ धूम होता है, वहाँपर अग्नि अवश्य होती है। वही आदमी एक दिन किसी पहाड़पर चला जाता है। वहाँ उसे धूम्रपान करनेके लिये या भोजन पकानेके लिये या अन्य किसी कामके लिये अग्निकी बड़ी जरूरत पड़ती है। उसी समय आगकी खोज करते हुए उसको दूरसे धुआँ दिखायी पड़ता है। वह धूम देखकर यह अनुमान कर लेता है कि इस पहाड़में जहाँ धूम दिखायी पड़ता है वहाँ अवश्य अग्नि है, क्योंकि जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होती है। अनुमान प्रमाणका नैयायिकों ने बड़ा विवेचन किया है, परंतु यहाँ उसका दिग्दर्शन ही पर्याप्त है।

अनुमान दो तरहका होता है———स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। अपने लिये जो अनुमान किया जाता है, उसे स्वार्थानुमान कहते हैं और दूसरोंके लिये जो अनुमान किया जाता है, वह परार्थानुमान कहलाता है।

पंचावयव वाक्य———परार्थानुमानमें पाँच वाक्य प्रयुक्त किये जाते हैं। उन पाँच वाक्योंके बिना परार्थानुमान हो ही नहीं सकता। उन वाक्योंके नाम हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। अनुमानमें ये पाँचों वाक्य इस तरह रक्खे जाते हैं —————

(१) रमेश मरनेवाला है। हेतु (प्रतिज्ञा)
(२) क्योंकि वह आदमी है। (हेतु)
(३) जितने आदमी हैं वे सभी मरनेवाले हैं—जैसे सुरेश, महेश, देवदत्त आदि (उदाहरण)
(४) रमेश भी एक ऐसा ही आदमी है। (उपनय)
(५) इसीलिये रमेश मरनेवाला है। (निगमन)

हेत्वाभास——अनुमान केवल हेतु (कारण) पर ही अवलम्बित है, इसलिये वह हेतु सच्चा होना चाहिये। जो हेतु सच्चा नहीं होता, उसे हेत्वाभास कहते हैं। कभी-कभी वास्तवमें जो सही कारण नहीं है, वह भी कारण-सा दिखलायी पड़ता है। उससे अनुमानकी सिद्धि नहीं हो सकती।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपमान---यह तीसरा प्रमाण है पहले देखी हुई किसी चीजके समान चीजको देखकर जहाँ किसी नयी चीजका ज्ञान होता है वहाँपर उपमान प्रमाण होता है। उदाहरणार्थ कोई मनुष्य 'गायके समान गवय (पशुविशेष) होता है' यह सुन लेता है। फिर वह किसी दिन जंगलमें जाकर गायके समान किसी पशुको देखता है। उस समय वह तुरन्त जान लेता है कि यह गवय है। यही उपमान कहलाता है।

शब्द---अन्य दार्शनिकोंकी भाँति यह दर्शन भी वेदवाक्योंमें विश्वास करता है इसलिये शब्दको प्रमाण मानता है। वस्तुके सच्चे अर्थको जाननेवाले मनुष्यका वचन शब्द कहलाता है। वह शब्द भी नैयायिकोंकी दृष्टिमें प्रमाण माना जाता है। इस प्रकार चार प्रमाण हैं।

न्याय दर्शनने प्रमेय बारह तरहके माने हैं--आत्मा, भोगोंका आधार शरीर, इन्द्रिय, अर्थ--भोग्य वस्तु, बुद्धि, मन, मन-वचन-शरीरका व्यापार, दोष, पुनर्जन्म, फल, दुःख और अपवर्ग--मोक्ष।

ईश्वर---नैयायिक ईश्वरको संसारका उपादान कारण समझते हैं। जिस तरह कुम्हार घड़ेके बनानेमें कारण है, वैसे ही इस संसारको बनानेवाला ईश्वर है। नैयायिकोंकी ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें सबसे बड़ी युक्ति यह है कि संसार भी घट-पट आदिके समान कार्य है और कार्य बिना किसी कर्ताके हो नहीं सकता, इसलिये ईश्वर अवश्य है। बिना कुम्हारके भी कभी घड़ा बन सकता है? क्या बिना जुलाहेके कभी वस्त्र हो सकता है? ठीक वैसे ही ईश्वरके बिना सृष्टिकी रचना असम्भव है। संसारको हम अपनी आँखोंसे देख रहे हैं। इसलिये ईश्वरकी भी अनुमानसे सिद्धि हो जाती है।

परमाणुवाद---नैयायिक सृष्टिकी रचनाको परमाणुसे सिद्ध करते हैं। उस ईश्वरकी जब इच्छा होती है तब एक परमाणु दूसरे परमाणुसे मिलकर द्व्यणुककी उत्पत्ति कर देता है और दो द्व्यणुक मिलकर त्रसरेणुको पैदा कर देते हैं। उनसे आकाश आदि पाँचों महाभूतोंकी उत्पत्ति हो जाती है।

मुक्ति---जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि सोलह पदार्थोंके वास्तविक ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। मिथ्या ज्ञान ही तो बन्धनका कारण है और उसीमें फँसा हुआ मनुष्य दुःख आदिको भोगता रहता है। इन पदार्थोंके तत्त्व-ज्ञानसे मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है। इस प्रकार ध्यान-धारणादि उपायोंसे आत्माका साक्षात्कार कर सुख-दुःख आदिसे रहित अवस्था प्राप्त करना ही मुक्ति है। न्याय दर्शन मुक्तिको आनन्दप्राप्ति नहीं समझता है। बस दुःखकी निवृत्ति ही इसके अनुसार मोक्ष है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(४) वैशेषिक दर्शन——

परिचय——वैशेषिक दर्शनका भी विषय प्रायः न्याय दर्शन-के ही समान है। थोड़ा-सा ही भेद है। वैशेषिक दर्शनका मुख्य विषय सात पदार्थोंका निरूपण है। इन सात पदार्थोंके ज्ञानके द्वारा धर्मसेवनकी ओर प्रवृत्ति ही सुखका साधन बतलाया गया है। इस दर्शनके निर्माण करनेवाले महर्षि कणाद हैं। कणादने बड़ी भारी तपस्या करके इस दर्शनका साक्षात्कार किया था। ये अन्नके कणकण बीनकर अपना जीवननिर्वाह करते हुए इस विद्याके चिन्तनमें लगे रहते थे। इनके ग्रन्थका नाम वैशेषिक दर्शन है। इसमें दस अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्यायमें दो-दो आह्निक हैं। करीब ३७० कुल सूत्र इसमें हैं। यह दर्शन न्याय दर्शनसे पुराना है। इन सूत्रों-पर प्रशस्तपाद-की टीका है। उस टीकामें इन सूत्रों की विस्तारसे व्याख्या की गयी है तथा कुछ नवीन मत भी प्रदर्शित किये है। इस टीकाके बाद इस दर्शनपर अनेक पुस्तक् लिखी गयीं। न्यायके समान इसपर भी बहुत साहित्य रचा गया है। आज-कल न्याय और वैशेषिक दोनों दर्शन प्राय : मिलसे गये हैं। प्रायः दोनों दर्शनोंके विषयोंको मिलाकर ही ग्रन्थ लिखे गये हैं।

पदार्थ——यह दर्शन मुख्यतया पदार्थोंका विवेचन करता है। पदार्थका अर्थ है कोई नाम धारण करनेवाली चीज। ये सात हैं——

१. द्रव्य
२. गुण
३. कर्म
४. सामान्य
५. विशेष
६. समवाय
७. अभाव

जगत्के सारे नामधारी पदार्थ इन सातोंके भीतर ही आ जाते हैं।

द्रव्य——द्रव्यउस वस्तुको कहते हैं जो गुण और कर्मका आश्रय हो। ये द्रव्य नौ हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें प्रथम पाँचको महाभूत भी कहा जाता है। यह दर्शन प्रत्येक महाभूतके दो रूप——नित्य और अनित्य मानता है। सुगन्ध जिसका धर्म है उसे पृथ्वी कहा जाता है। रूपरहित परंतु स्पर्शवाली चीजको वायु कहा जाता है। रूपवान् होते हुए जो स्पर्श भी किया जा सके उसे तेज कहते हैं। शीतल स्पर्शवाली वस्तुको जल कहते हैं। जिसका शब्द गुण हो उसे आकाशके नामसे पुकारा जाता है। दिक्, काल, आतमा और मन——ये चारों नित्य द्रव्य हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आत्मा——यह एक नित्य वस्तु है जिसमें सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदि रहते हैं। यह व्यापक है और प्रत्येक शरीरमें भिन्न है। वैशेषिक दर्शनका आत्मा वेदान्त दर्शनके आत्मासे बिलकुल भिन्न है। इसमें सुख-दुःख आदि निवास करते हैं; परन्तु वेदान्त आत्माको सुख-दुःख आदिसे रहित मानता है। इस दर्शनके अनुसार आत्मा अनेक हैं।

मन——सुख आदिके अनुभवके लिये आत्माको जिसकी सहायता लेनी पड़ती है वह है मन। मन भी प्रत्येक शरीरमें अलग-अलग है, इसलिये अनेक है। यह भी आत्माके समान नित्य है। वैशेषिक दर्शन ही दिक्, काल और मनको भी नित्य मानता है, अन्य दर्शन नहीं।

गुण——गुण द्रव्यमें निवास करते हैं। गुणका सीधा अर्थ है वस्तुमें रहनेवाला धर्म ये गुण सख्यामें २४ माने जाते हैं।

कर्म——कर्मका सीधा अर्थ है क्रिया। प्रत्येक आँखोंके द्वारा देखे जानेवाले द्रव्यमें क्रिया अवश्य रहती है। यह कर्म पाँच तरहका माना गया है——जैसे ऊपर उछालना, नीचे, फेंकना, सिकुड़ना, फैलना, चलना।

सामान्य——सामान्यका अर्थ है एक प्रकार की सब वस्तुओंमें रहनेवाला धर्म। इसे जाति भी कहते हैं। जैसे मनुष्यों में मनुष्यत्व, पशुओंमें पशुत्व और गायोंमें गोत्व धर्म रहता है। यह नित्य माना गया है। [illegible] अनेकोंमें रहते हुए भी एक है।

विशेष——एक द्रव्यको दूसरे द्रव्यसे भिन्न करनेवाला धर्म विशेष कहलाता है। यह सामान्यका उलटा है। सामान्य एक प्रकारकी भिन्न-भिन्न वस्तुओंमें एकता बतलाता है, परंतु विशेष एक प्रकारकी वस्तुओंमें भेद करता है। जैसे काली गाय, पीली गाय, नीली गाय और सफेद गाय। यद्यपि गाय सब एक हैं; परंतु नीले, पीले, कालेने उनमें भेद कर दिया।

समवाय——प्रत्येक वस्तुका एक-दूसरी वस्तुसे सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्ध दो तरहका होता है ——संयोग और समवाय। संयोग सम्बन्ध उन वस्तुओंका होता है जो बिना संयोगके भी रह सकती हैं। यह सम्बन्ध सदा नहीं रहता है। उदाहरणार्थ एक आदमी कपड़ा पहने हुए है। उसका कपड़ेके साथ यही संयोग सम्बन्ध है, क्योंकि कपड़ा हटा लेनेपर भी मनुष्यका अस्तित्व वैसे ही बना रहता है। इसके विपरीत समवाय सम्बन्ध उन दो वस्तुओंमें होता है जिनका अस्तित्व ही एक वस्तुके न रहनेपर न रहे। उदाहरणार्थ—मिट्टी और घड़ेका सम्बन्ध। मिट्टीके नष्ट होते ही घड़ा नष्ट और धागेके नष्ट होते ही वस्त्र नष्ट। यह सम्बन्ध नित्य है।

अभाव——अभावको पदार्थ मानना इस दर्शनकी एक विशेष बात है। इसकी कल्पना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैशेषिकको इसलिये करनी पड़ी कि वह दुःखोंके अत्यन्त अभावको मुक्ति मानता है। जबतक वह अभावको पदार्थोंमें नहीं स्वीकार करेगा, तबतक वह मुक्तिकी सिद्धि नहीं कर सकता। मुक्ति भी तो अभाव ही है।

परमाणुवाद

वैशेषिक भी न्यायकी भाँति परमाणुसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति मानता है। दो परमाणुओं-के संयोगसे द्वचणुक और दो द्वचणुकोंके मिलनेसे त्रसरेणु पैदा होता है। वही त्रसरेणु स्थूल महाभूतोंकी उत्पत्तिका कारण है। वैशेषिकवालोंकी यह धारणा है कि प्रत्येक परमाणु शान्त और निश्चल पड़ा रहता है। परंतु प्राणियोंके पुण्य और पापके फलस्वरूप उन परमाणुओंमें हलचल पैदा हो जाती है और वे सृष्टिके कारण बन जाते हैं।

धर्म

वैशेषिक सूत्रका पहला सूत्र ही धर्मकी परिभाषा करता है। उसका अर्थ है जिससे 'अभ्युदय--सर्वांगीण उन्नति और निःश्रेयस--मोक्षकी प्राप्ति हो वही धर्म है।' धर्मको सिद्ध करनेवाले कर्म दो तरहके हैं---सामान्य और विशेष। सामान्य धर्म हैं अहिंसा, चोरी न करना, सत्य, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, विचारशुद्धि, प्राणीमात्रका हित करना, क्रोध न करना आदि। विशेष धर्म धर्मग्रंथोंमें प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रमके विस्तारसे वर्णित हैं। उनको वहाँसे देखना चाहिये। इन कर्मोंका आचरण किसी इच्छासे करनेपर तो वाञ्छित फल मिलता है और निष्कामभावसे करनेपर ये ही कर्म मुक्ति प्रदानकरनेवाले बन जाते हैं।

ईश्वर---

न्यायदर्शनकी भाँति वैशेषिक दर्शनने भी ईश्वरको संसारका उपादान कारण नहीं माना है। केवल ईश्वरसत्ताको स्वीकार किया है।

उपसंहार——

यह दर्शन यथार्थवादी विचारधाराको स्वीकार करता है। सांसारिक पदार्थोंको भी अनित्य नहीं मानता है। आत्माको भी यह एक नहीं मानता है। मुक्तिका भी स्वरूप इनके यहाँ आनन्दलाभकी अवस्था नहीं हैं, प्रत्युत कष्टोंसे छुटकारा पाना ही मुक्ति है। वैशेषिकों-की इस मुक्तिका बादके विद्वानोंने बड़ा उपहास किया; क्योंकि ऐसी मुक्ति जड़ता है। इन त्रुटियोंके होते हुए भी यह दर्शन यथार्थताका अधिक प्रतिपादक है।

(५) मीमांसा दर्शन----

परिचय---यह दर्शन प्रधानतया वेदके ब्राह्मणभागसे सम्बद्ध है। इसमें ब्राह्मण-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ग्रंथों में वर्णित यज्ञोंकी प्रक्रिया और महत्त्वका वर्णन है। यज्ञका विधान करनेवाले वेदके वाक्योंकी व्याख्या कैसे करनी चाहिये, किस यज्ञको कब, किसलिये और किस प्रकार करना चाहिये, इसका निर्णय करना इस दर्शनका काम है। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रारम्भमें इसका मुख्य काम वैदिक वाक्योंकी प्रामाणिकताका निर्णय करना ही था। इसलिये उस रूपमें उसे दर्शन भी कहना ठीक नहीं था। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों इसका विकास होता गया, त्यों-त्यों इसमें आत्मा-सम्बंधी विचार भी होने लगा और यह दर्शनोंकी कोटिमें आ गया। मीमांसाका अर्थ है किसी चीजकी विधिपूर्वक परीक्षा करना। इससे यह प्रतीत होता है कि भारतीय लोग वेदके वाक्योंका भी अन्ध अनुसरण नहीं करते थे, किन्तु उनकी भी प्रमाणोंके आधारपर विवेचना करते थे।

प्रादुर्भाव---इस दर्शन को सबसे पहले जैमिनि नामक ऋषिने अनुभूत किया और मीमांसा दर्शन नामक ग्रंथ लिखा। यह बारह अध्यायोंमें विभक्त है। इसमें कुल २५०० के लगभग सूत्र है। आकारमें यह दर्शन सबसे बड़ा है। इसपर शबर स्वामीकी टीका सबसे प्राचीन है। जिसमें इन सूत्रोंकी व्याख्या बड़े विस्तारके साथ की गयी है। बादमें अनेक विद्वानोंने इस विषय पर वड़ा मनन किया और अनेक ग्रंथ बनाये। आगे चलकर कुमारिल भट्ट और प्रभाकर नामके दो विद्वान हुए, जिन्होंने इन सूत्रोंकी व्याख्या दो तरहसे की। इस प्रकार मीमांसामें भी भट्टमत और प्रभाकरमतके नामसे दो मत चल पड़े। इस दर्शनका आज कल पठन-पाठन बहुत कम हो गया है। वैसे यह दर्शन बड़ा महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह वैदिक विधियोंकी मीमांसा करनेके कारण वैदिक साहित्यपर पूरा प्रकाश डालता है।

विषय---वैदिक वाक्योंकी प्रामाणिकता प्रस्तुत करते हुए इस दर्शनने भी सर्वप्रथम न्याय वैशेषिककी भाँति प्रमाणोंपर विचार किया है। ये प्रमाण छः हैं---प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। इनमें प्रथम चार प्रमाणोंपर तो न्यायदर्शनपर विचार करते समय विचार हो ही चुका है। मीमांसा दर्शन भी उनको उसी रूपमें मानता है, इसलिये उनपर विचार न कर केवल अर्थापत्ति और अनुपलब्धिपर विचार किया जाता है।

अर्थापत्ति---जब कोई अर्थ दूसरे अर्थके बिना उत्पन्न नहीं होता है, तब उस अर्थकी कल्पना कर ली जाती है। उदाहरणार्थ एक आदमी दिनमें सदा भूखा रहता है फिर भी मोटा है। बिना भोजनके आदमी मोटा रह नहीं सकता है, इसलिये यहाँपर 'वह रातमें भोजन करता होगा' इस अर्थकी कल्पना कर ली जाती है। इसीका नाम अर्थापत्ति है। मीमांसक इस प्रमाणपर बहुत जोर देते हैं।

अनुपलब्धि---अनुपलब्धिका अर्थ है किसी वस्तुका अभाव। जो वस्तु है उसको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इन्द्रियोंसे अनुभूत किया जा सकता है, परंतु जो नहीं है उसका अनुभव नहीं होता है, इसलिये अनुपलब्धि भी एक प्रमाण सिद्ध होता है।

मीमांसा दर्शनका प्रधान उद्देश्य धर्मका विश्लेषण करना है। धर्मके विषयमें प्रमाण है वेद। इसलिये मीमांसाने वेदके स्वरूप और प्रभाविकताको दिखानेके लिये बहुत-सी युक्तियाँ दी हैं। उन युक्तियोंमें ये युक्तियाँ मीमांसकोंमें प्रधान हैं।

मीमांसातत्त्वज्ञान——तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे मीमांसा इस सारे प्रपंचको नित्य मानता है। मीमांसक ये आठ पदार्थ मानते हैं——द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, समानता और संख्या। इनमें प्रथमचारका विवेचन वैशेषिक दर्शनमें हो चुका है। वैशेषिक जिसे समवाय कहता है, मीमांसा उसे परतन्त्रताके नामसे पुकारता है। मीमांसक इसे नित्य नहीं मानते हैं; क्योंकि यह अनित्य पदार्थोंमें भी रहता है। शेष तीनका अर्थ साफ है, अतः उनका विवेचन अनावश्यक है।

संसार——इन्द्रियोंके द्वारा बाहरी चीजों का अनुभव होता है। इनके द्वारा संसारको जिस रूप में देखा जाता है उस रूपमें संसार नित्य है। इस संसारमें तीन तरहकी चीजें हैं——(१) शरीर (भोगायतन), (२) इंद्रियाँ (भोगसाधन), (३) पदार्थ (भोग विषय)। शरीरमें रहकर आत्मा सुख-दुःख आदिका अनुभव करता है। इंद्रियाँ उस अनुभवमें साधन हैं। बाहरी वस्तुओं का अनुभव किया जाता है। इन तीन तरहकी चीजोंसे युक्त यह संसार अनादि और अनन्त है। इस जगत्की मूल सृष्टि और आत्यंतिक प्रलय कभी नहीं होता है। केवल व्यक्ति उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। संसारकी सृष्टि और नाश कभी नहीं होता है। मीमांसक भी परमाणुके द्वारा व्यक्तिकी उत्पत्ति मानते हैं; परंतु न्याय दर्शनकी भाँति परमाणुको वे अनुमानगम्य न मानकर इन्द्रियगोचर मानते हैं। ये अणुको सूक्ष्म नहीं मानते। परमाणु भी आँखसे दिखायी पड़नेवाले ही हैं। मीमांसक संसारको उसी रूपमें लेते हैं।

आत्मा——आत्मा कर्ता और भोक्ता दोनों है। वह व्यापक और प्रत्येक शरीरमें भिन्न है। ज्ञान, सुख और दुःख आदि उसमें समवाय सम्बन्धसे रहते हैं। मीमांसक आत्मामें भी क्रिया मानते हैं। यह क्रिया दो तरहकी है——स्पन्द और परिणाम। स्पन्दका अर्थ है जगह बदलना और परिणामका अर्थ है रूप बदलना। आत्मामें परिवर्तन तो नहीं होता परंतु रूपपरिवर्तन होता है। परिवर्तनशील होते हुए भी आत्मा नित्य है। आत्मामें ज्ञान और अज्ञान दोनों रहते हैं। इनमें ज्ञानअंशसे आत्मा ज्ञानका अनुभव करता है और अज्ञान अंशसे वह सुख, दुःख, इच्छा आदिका अनुभव करता है।

धर्म——मीमांसा दर्शनका विश्वास है कि धर्मके विषयमें वेद ही सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है। वेदमें धर्मका निर्णय करनेकी जितनी शक्ति है उतनी अन्य किसीमें नहीं। सभी वेदवाक्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्मके लिये ही प्रेरित करते हैं इसलिये वेदमें बतलाये हुए यज्ञ आदि कर्म ही धर्म हैं। इन कर्मोंको विधिपूर्वक करनेसे मुक्ति---दुःखोंसे रहित स्वर्ग-की प्राप्ति होती है। वेदमें तीन तरहके कर्म बतलाये गये हैं ---(१) काम्य---किसी फलको प्राप्त करनेकी इच्छासे किये गये कर्म। उदाहरणार्थ स्वर्ग प्राप्त करनेकी अभिलाषासे यज्ञ करना। (२) निषिद्ध--- जिनका वेदमें निषेध किया गया है तथा जो अनिष्ट फल देनेवाले कर्म हैं। (३) नित्यनैमित्तिक-अवश्य करने लायक कार्य---संध्यावन्दन आदि और समय-समयपर किये जानेवाले श्राद्ध आदि कर्म। प्रत्येक कर्ममें पुण्य और पाप उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है। कर्मके अनुसार पाप और पुण्य पैदा होते हैं और उसके द्वारा मनुष्य सुख-दुःख आदि फल भोगता है।

ईश्वर---जैसे अन्य दर्शन कर्मफलदाता ईश्वरको मानते हैं वैसे मीमांसक ईश्वरको नहीं मानता है। उसके अनुसार यज्ञसे ही शुभ या अशुभ फल मिल जाता है। बादके मीमांसकोंको यह कमी खटकी और उन्होंने यज्ञके स्वामीके रूपमें ईश्वरको मान लिया। मन्त्रोंके अतिरिक्त देवता भी इनको मान्य नहीं हैं।

मोक्ष---मोक्षके विषयमें भी मीमांसामें खूब विवेचन मिलता है। संसारके साथ आत्माका सम्बन्ध छूट जाना ही मोक्ष कहलाता है। संसारके तीन बन्धनों---शरीर, इन्द्रियाँ और बाह्य पदार्थ---ने आत्माको एक प्रकारसे कैदमें फँसा रक्खा है। शरीर, इन्द्रियों और विषयोंका नाश वेदविहित नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकेसेवनसे हो जाता है और बन्धन पैदा करनेवाले धर्म-अधर्मके बिल्कुल नष्ट हो जानेसे आगे वे पैदा भी नहीं होते, इसलिये आत्माको इस भौतिक जगत्में आनेकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। इस प्रकार जगत्के प्रपंचोंके साथ आत्माका सम्बन्ध छूट जाना ही मीमांसा दर्शनके अनुसार मोक्ष है।

उपसंहार---वैदिक धर्मकी जानकारी प्राप्त करने के लिये मीमांसा दर्शनका ज्ञान बड़ा जरूरी है। वेदमें बहुतसे वाक्य आपसमें विरोधी प्रतीत होते हैं। उनका विरोध-परिहार इस दर्शनद्वारा ही किया गया है, इसलिये वाक्यका ज्ञान इसीसे होता है। वेदान्त दर्शनमें ज्ञानाका विवेचन है, इसलिये उसे 'उत्तर-मीमांसा' कहते हैं। ज्ञानकांडके पूर्व कर्मकाण्डकी आवश्यकता है और इस दर्शनमें कर्मकाण्डका ही वर्णन है, इसलिये इसे 'पूर्व-मीमांसा' भी कहा जाता है।

(६) वेदान्त दर्शन---

भूमिका---भारतीय दर्शनोंमें वेदान्त दर्शनका सबसे अधिक मान है। इसे ज्ञान-परक होने के कारण 'उत्तर-मीमांसा' भी कहते हैं। भारतीय विचारधाराका चरम उत्कर्ष इसीमें मिलता है। वेदान्तके सिद्धान्त उपनिषदोंमें कूट-कूटकर भरे पड़े हैं। सांसारिक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कष्टोंसे पीड़ित लोगोंके लिये यह अमृतकी वर्षा है। इस दर्शनमें ज्ञानका जितना मन्थन हुआ है उतना विश्वके साहित्यमें कहीं भी सम्भवतः नहीं हुआ। परम आनन्दकी प्राप्तिके अभिलाषी जनोंको इसके अध्ययनसे सचमुच अपूर्व शान्ति और संतोष मिलते हैं। इसका मनन करनेपर मनुष्य आनन्दरूप ही बन जाता है। आत्मज्ञानका यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस दर्शनने उस परम तत्त्वका साक्षात्कार करवाया है जिसे जान लेनेपर कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं बच रहता। इसके सिद्धान्त ऐसी दृढ़ नींवपर स्थित हैं कि उनका खण्डन कोई भी नहीं कर सकता।

वेदान्तका अर्थ है वेदोंके रहस्यका ज्ञान। आत्मतत्त्वकी एकताका प्रतिपादन करना ही वास्तवमें सारे उपनिषदोंका सार है। इस नाना नाम-रूपात्मक जगत्में एकताका अनुभव करना ही मानव-ज्ञान की चरम सीमा है। इस दर्शनने मनुष्य को उस अपूर्व देशके दर्शन कराये हैं, जहाँ पहुँचकर वह प्राणिमात्रसे आत्मीयताका अनुभव करने लगता है। वह प्राणि-मात्रमें उसी परम तत्त्व ब्रह्मकी सत्ताका अनुभव करता हुआ घृणा आदि बुरी भावनाओंका सर्वथा परित्याग कर देता है। जिस देशमें इतने ऊँचे विचारोंकी धारा बही है, वह देश सचमुच बड़ा गौरवशाली रहा होगा।

प्रादुर्भाव——इसका प्रचलन उपनिषदोंके कालसे ही भारतमें रहा है। ऋग्वेदके कालमें ही ब्रह्मकी सत्ताका अनुभव हो गया था, परंतु उस ज्ञानका पूर्ण विकास उपनिषदोंमें ही मिलता है। उपनिषदोंमें तो केवल यही एक तत्त्व विस्तारसे वर्णित है। उसके बादमें इस दर्शनका एक सुन्दर विवेचन करनेवाला यह ग्रंथ महर्षि बादरायणका है जिसका नाम 'ब्रह्मसूत्र' है। इसमे करीब साढ़े पाँच सौ सूत्र हैं। इस ग्रन्थपर श्रीशंकराचार्यका भाष्य ही सबसे अधिक प्रामाणिक समझा जाता है। अद्वैतमतका प्रचारक इन्हीं श्रीशंकराचार्यको माना जाता है। आत्मा और परमात्माकी एकता इसी भाष्यने घोषित की। उनके बादमें तो अनेक आचार्योंने अपने-अपने सिद्धान्तोंके अनुसार इस दर्शनपर अनेक भाष्य तथा स्वतंत्र ग्रंथ रचे; परंतु शंकरभाष्यका ही सबसे अधिक आदर हुआ। ये श्रीशंकराचार्य अलौकिक प्रतिभाशाली योगी पुरुष थे। इनको भगवान् शंकरका अवतार माना जाता है। इन्होंने अद्वैत मतका प्रचारकर भारतीय विचारधाराको बहुत उन्नत कर दिया।

विषय——वेदांत दर्शन आत्मा और परमात्माको एक ही मानता है और उसे ज्ञान-रूप बतलाता है। ज्ञानमें कभी भेद रह नहीं सकता है, इसलिये आत्माम भी भिन्नता रह नहीं सकती। उसकी दृष्टिमें यह प्रत्यक्ष दिखायी पड़नेवाला जगत् (भेद) माया की प्रतीति है। वेदान्त तीन तरहके पदार्थोंकी सत्ता बतलाता है——पारमार्थिक, प्रातिभासिक और व्याव-हारिक। जिसकी सत्ता सर्वदा रहे, वही पारमार्थिक सत्तावाला पदार्थ है और वह है ब्रह्म। स्वप्नमें दिखायी पड़नेवाले पदार्थ प्रातिभासिक हैं। सीपके अंदर चाँदीका जो कभी-कभी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भ्रम होता है वह भी प्रातिभासिक है। प्रातिभासिक सत्तावाले वे पदार्थ हैं जो सबको समान-रूपमें दिखायी न पड़े। कुर्सी, मेज, वृक्ष, आदिजगत् के पदार्थ व्यवहारिक हैं। जाग जानेपर जैसे स्वप्नकी चीजोंका अस्तित्व नहीं रहता है उसी तरह आत्मज्ञान हो जानेपर जगत् (भेद) का भी अस्तित्व नहीं रह जाता। जैसे जागनेपर स्वप्नकी चीजें झूठ हो जाती हैं उसी तरह ज्ञानीके लिये जगत् भी मिथ्या हो जाता है। बस, सारा जगत् ब्रह्ममय ही है। यह सत्, चित् और आनन्दरूप है। जगत् (भेद) कोई वस्तु नहीं है। वह तो केवल अज्ञानके कारण दिखायी पड़ता है। जबतक मनुष्य इस अज्ञानमें रहता है तभीतक वह सांसारिक कष्ट भोगता रहता है। जहाँ उसे ज्ञान हुआ कि वह सारे कष्टोंको पारकर आनन्दमय बन जाता है।

अधिकारी——इस ज्ञानका अधिकारी बननेके लिये मनुष्यको कुछ गुणोंकी आवश्य-कता पड़ती है। वे गुण निम्नलिखित हैं——चित्तकी निर्मलता, मन तथा इन्द्रियोंपर नियंत्रण, सांसारिक भोग-विलासोंसे वैराग्य, सुख और दुःखमें भेद न समझना, गुरुके वचनोंमें श्रद्धा, मोक्षकी अभिलाषा और चित्तकी एकाग्रताका अभ्यास। आजकल प्रायः लोग पर-उपदेशार्थ वेदान्तके सिद्धान्तोंका तोतेकी तरह रटन लगाते देखे जाते हैं। परंतु समय पड़नेपर स्वयं उनपर अमल नहीं कर सकते। वे इस ज्ञानके वास्तविक अधिकारी नहीं हैं। वेदांतका अधिकारी बननेके लिये मनपर नियंत्रण जरूरी है जो कि बड़ी साधनाके पश्चात् ही सम्भव हो सकता है। यह अधिकारी सांसारिक कष्टोंसे मुक्त होनेकी इच्छासे गुरुकी सेवामें जाता है। गुरु भी उसे उपदेश देता हुआ वास्तविक तत्त्व समझा देता है।

माया——जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम हो जाता है। वैसे ही सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप ब्रह्म में जगत् आदिका भ्रम होता है। यह माया न सत् पदार्थ है और न असत् पदार्थ है। वह माया त्रिगुणात्मिका है तथा एक और अनेक दोनों है। ब्रह्मकी स्थिति ही हमारे अन्दर एकता पैदा करती है और माया भेदको पैदा करनेवाली है। मायाके कारण ही निर्गुण और अखण्ड ब्रह्म जगत्के रूपमें दिखायी पड़ता है। मायाकी आवरण और विक्षेप नामकी दो शक्तियाँ हैं। आवरण शक्तिसे परिमित होते हुए भी अज्ञान देखनेवालेकी बुद्धिपर पर्दा डालकर अपरिमित और सुख-दुःख शून्य आत्माको ढक देता है। जैसे मेघ छोटा होते हुए भी देखनेवालेकी आँखोंके सामने आकर विशाल सूर्यमण्डलको ढक लेता है वैसे ही माया ब्रह्मको ढक लेती है। विक्षेप शक्तिसे माया आत्मामें आकाश आदि प्रपंचको उत्पन्न कर देती है।

जगत्——आवरण और विक्षेप नामक शक्तियोंसे युक्त मायाके द्वारा आच्छादित चैतन्यरूप ईश्वर जगत्का निमित्त और उपादान कारण बन जाता है। तमोगुणप्रधान विक्षेप-शक्तियुक्त मायासे आच्छादित ईश्वरसे आकाशकी तन्मात्रा पैदा होती है, उससे वायुकी तन्मात्रा, उससे अग्निकी तन्मात्रा, उससे जलकी तन्मात्रा और उससे पृथ्वीकी तन्मात्रा पैदा होती है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इनसे क्रमसे सूक्ष्म और स्थूलभूत पैदा होते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, बुद्धि और मन, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राण——ये सूक्ष्म शरीरके सतरह अवयव है। इनमें ज्ञानेन्द्रियोंसहित बुद्धि विज्ञानमय कोश कहलाता है। ज्ञानेन्द्रियोंसहित मन मनोमय कोश कहलाता है और प्राण आदि पाँच वायु कर्मेन्द्रियोंसहित प्राणमय कोश कहलाता है। ये तीनों कोश सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं। ये ही सूक्ष्मभूत पंचीकरणके पश्चात् स्थूलभूत बन जाते हैं।

पञ्चीकरण———इन पाँचों महाभूतोंमें प्रत्येकके दो-दो भाग किये जाते हैं। प्रत्येकका एक-एक भाग तो सुरक्षित रख लिया जाता है और दूसरे भागके चार-चार टुकड़े कर लिये जाते हैं। उन चार टुकड़ोंमेंसे एक-एक भाग प्रत्येकमें मिला दिया जाता है। उदाहरणार्थ——आकाशके प्रथम दो खण्ड किये। एक खण्ड रख लिया और दूसरे खण्डके फिर चार टुकड़े किये। उन चारों टुकड़ोंको क्रमशः वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीमें मिला दिया। उसी प्रकार वायुके द्वितीय भागके चार खण्डोंको अपने सिवा आकाश आदि चारोंमें मिला दिया। इसी तरह प्रत्येक भूतके द्वितीय भागके चार-चार खण्ड कर अन्य चारों भूतोंमें मिला दिये जाते हैं। उसी क्रियाको वेदान्तमें पंचीकरण कहते हैं। इसी क्रियाके द्वारा भूत सूक्ष्मसे स्थूल बन जाते हैं। इन स्थूल भूतोंसे सारे स्थूल प्रपंचकी उत्पत्ति होती है।

ब्रह्म———वेदान्त दर्शन ब्रह्मको ही तात्त्विक पदार्थ मानता है। यह मायासे आच्छादित नहीं होता है। यह सदा सत्, चित् और आनन्दमय रहता है। मायासे युक्त सगुण ईश्वर और जीवात्मा सभी इसीके अंश हैं। वास्तवमें जीव और ब्रह्म एक ही हैं। दोनोंमें किसी तरहका भेद नहीं है, परंतु माया के कारण दोनोंमें भेद दिखलायी पड़ता है। जैसे घड़ेमें भरा हुआ जल और समुद्रका जल दोनों जल ही हैं, परन्तु जबतक घड़ेका आवरण रहता है तबतक दोनोंमें भेद प्रतीत होता है। घड़ेके फूट जानेपर दोनों जल एक ही हो जाते हैं। उसी प्रकार मायाका आवरण हट जाते ही जीव और ब्रह्म एक प्रतीत होने लगते हैं। उनमें भेद मायासे ही उत्पन्न किया हुआ है। इस दर्शनका यही सबसे ऊँचा आदर्श है कि इसने जगत्के भेदमें अभेद ढूँढ़ निकाला है, जिसके फलस्वरूप भारतीय लोग प्राणिमात्रमें ब्रह्मकी सत्ताका अनुभव कर उनसे एकताका अनुभव करते हैं और उनके प्रति दया और करुणा करते आये हैं। प्राणिमात्रको एक ही समझना वास्तवमें बहुत ऊँचा आदर्श है। इसी आदर्शके कारण भारतने वसुधाभरको कुटुम्ब समझा है। यह सारा संसार ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म है आनन्दमय——इसलिये सारा संसार स्वभावतः ज्ञानीके लिये आनन्दके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

मुक्ति——जिस मनुष्यने जीव और ब्रह्मकी एकताको अच्छी तरह समझ लिया है वह कभी भी दुष्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त नहीं हो सकता। उसके सभी कर्म निष्कामभावसे ही होते हैं और अज्ञानरहित हो जानेके कारण अज्ञानसे होनेवाले कर्म आदिका वह सर्वथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परित्याग कर देता है। वह न तो इस शरीरका कोई महत्त्व समझता है, और न इस शरीरके लिये किये जानेवाले कर्मोंको ही कोई महत्त्व देता है। इस प्रकार कर्मोंमें उसकी आसक्ति नहीं रह जाती। जैसे दर्शक इन्द्रजाल दिखानेवालेके द्वारा दिखाये जानेवाले तमाशोंको देखता हुआ भी उनको मिथ्या समझता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य इस जगत्‌को देखते हुए भी इसे मिथ्या समझता है और इसके व्यवहारको कोई महत्त्व नहीं देता, बल्कि इससे उदासीन हो जाता है। उसका फल यह होता है कि वह देहका अभिमान बिल्कुल छोड़ देता है। देहका अभिमान परित्याग करनेवाला मनुष्य शुभाशुभ कर्मोंकी ओर आकृष्ट होता ही नहीं। वह कर्म केवल इसीलिये करता है कि उनके बिना उसकी जीवनलीला नहीं चलती है। उस समय केवल वे ही कर्म वह करता है जो जीवन-यात्राके लिये अनिवार्य हैं, पर उनमें वह कर्तापनका अहंकार नहीं रखता। वह सारे पाप-पुण्योंसे मुक्त हो जाता है, क्योंकि अब वह कोई काम्य कर्म नहीं करता। इस प्रकार जब वह शरीरके अभिमानसे सर्वथा मुक्त होकर सारे प्राणि-मात्रको अपने ही समान समझने लगता है, तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है। जब उसके कर्म फल पैदा करना बंद कर देते हैं और इस शरीरका अन्त हो जानेपर उसकी आत्मा परब्रह्ममें लीनहोकर आनन्दमय हो जाती है तब वह साक्षात् ब्रह्म ही बन जाता है। बस, इसी आनन्दमय अवस्थाकी प्राप्तिका नाम है 'मुक्ति'। मुक्त आत्मा सारे अज्ञानके कारण उत्पन्न होनेवाले प्रपंचसे रहित हो अखण्ड ब्रह्मरुप ही हो जाता है।

उपसंहार——इस दर्शनका ज्ञान सब दर्शनोंकी अपेक्षा ऊँची कोटिका है। इसी दर्शनने मनुष्यको आनन्दमय अवस्थाके दर्शन कराये हैं। इसी दर्शनने मनुष्यको सारे विश्वके चराचरको अपने सामान समझनेकी शिक्षा दी है। इसी दर्शनने सुख-दुःख आदिको मिथ्या बतलाते हुए मानवको आनन्द प्राप्ति का सच्चा मार्ग बतलाया है। इस दर्शनके सिद्धान्त उपनिषदोंमें कूट-कूटकर भरे पड़े हैं। मानवको उन्नतिके परम शिखरपर इसी दर्शनने पहुँचाया है। आजके संत्रस्त और स्वार्थी विश्वको यह दर्शन ललकारकर पुकार रहा है कि तुम किससे घृणा करते हो? तुम्हारेसे भिन्न कुछ है ही नहीं। परंतु खेद इस बातका हैं कि भारतीय अपने इस अपूर्व भण्डारको भूल गये हैं और फलस्वरूप मार्ग-भ्रष्ट हो अन्धकारमें भटक रहे हैं। जिस देशके पास इतना विशाल ज्ञानका भण्डार हो वह भी अन्धकारमें भटकता फिरे, यह एक बड़ा भारी आश्चर्य है।

★

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सदाचार

आचरणकी शुद्धि मनुष्यको ऊँचा उठाती है और उसकी मलिनता मनुष्यको पतनके गर्तमें डाल देती है। चाहे मनुष्य कितना भी विद्वान् या धनवान् हो, जबतक उसका आचरण श्रेष्ठ नहीं होगा, तबतक समाजमें उसको आदरकी दृष्टिसे नहीं देखा जायगा, इसलिये समाजमें सम्मान पानेके लिये मनुष्य सदाचारी बने, यह नितान्त आवश्यक है। हमलोग प्रतिदिन जो आचरण करते हैं उन्हें ही आचार कहा जाता है। अच्छे आचरणका नाम है सदाचार।

विद्यार्थी-जीवन एक ऐसा समय है जिसमें बालकके जैसी अच्छी या बुरी आदतें पड़ जाती हैं वे जीवनभर छूटती नहीं हैं, इसलिये इस अवस्थामें विद्यार्थियोंको अच्छी-अच्छी आदतें डालनेका अभ्यास करना चाहिये। ये ही अच्छी आदतें आगे चलकर सदाचारका मुख्य अंग बन जाती हैं।

सदाचारके कतिपय सामान्य नियम यहाँपर दिये जाते हैं जिनका पालन करना प्रत्येक विद्यार्थीके लिये निहायत जरूरी है—

(१) विद्यार्थीको कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिये।

(२) कभी किसीकी वस्तु बिना माँगे नहीं लेनी चाहिये और माँग कर ली हुई वस्तुको सुरक्षित निश्चित समयपर वापस लौटा देनी चाहिये।

(३) विद्यार्थीको कभी किसीको गाली-गलौज नहीं देना चाहिये और न किसीको कोई अश्लील शब्द ही कहना चाहिये।

(४) विद्यार्थीको पचीस वर्षतककी अवस्थापर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

—०—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीमद्भगवद्गीता

परिचय --

श्रीमद्भगवद्गीताका ही छोटा नाम गीता है। इसका विश्वके साहित्यमें बहुत ऊँचा स्थान है। शायद ही दुनियामें ऐसा कोई ग्रन्थ हो जो इसकी समानता कर सके। वैसे गीता कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं है। महर्षि वेदव्यासके प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारतके भीष्मपर्वमेंसे अठारह अध्याय निकालकर उन्हें ही अलग पुस्तकका रूप दे दिया गया है। परंतु महाभारतका एक अंग होने पर भी इसका धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिसे बहुत बड़ा महत्व है। यह हर एक मनुष्यके पढ़नेके लायक ग्रन्थ है। भारतीय महर्षियोंने अपने चिन्तनके बलसे जितने भी अमूल्य रत्न विश्वके हितके लिये ढूँढ़ निकाले थे, उन सबके सारको इस ग्रन्थमें हम एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। यह सभी लोकोपकारी शास्त्रोंका सारभूत ग्रन्थ है। इसके सिद्धान्त साम्प्रदायिकताकी गन्धसे बिल्कुल दूर हैं। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, बौद्ध या, जैन हो या अन्य किसी भी धर्मको माननेवाला हो, इससे ऐसे अनुपम लोकहितकारी सिद्धान्त प्राप्त कर सकता है, जिनसे उसे जीवनमें अपूर्व प्रकाश प्राप्त हो सके।

अन्य ग्रन्थोंकी भाँति यह किसी एक सिद्धान्त या मतका प्रतिपादन नहीं करता वरं उस समयतक जितने भी सिद्धान्त स्थिर तथा जनताद्वारा मान्य हो चुके थे, उन सभीका इसमें समावेश किया गया है। यही कारण है कि इसे सार्वभौम ग्रन्थ माना जाता है। विश्वके किसी भी छोरका मनुष्य इसे पढ़कर अपूर्व आनन्द और शिक्षा प्राप्त कर सकता है। यह निवृत्तिमार्गके पथिकोंको जितना आनन्द देता है, उतना ही कर्म-मार्गके पथिकोंको भी। भक्तलोग इसे एकमात्र भक्तिकी ही अपूर्व निधि समझे बैठे हैं। ज्ञानी इसे ज्ञानकी ही अनुपम निधि बतलाते हैं। लोक-व्यवहारके हिमायती कहते हैं कि यह केवल कर्मको ही शिक्षा देनेवाला ग्रन्थ है। बात भी वास्तवमें ठीक है। इसे कोई भी सम्प्रदायवाला अपनी ही सम्पत्ति नहीं बतला सकता। यह सभीकी सामान्य सम्पत्ति है। इस खजानेमेंसे सभी यथेष्ट मनोऽनुकूल रत्न प्राप्त कर सकते हैं।

मानव-जीवनके चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके विषयमें गीताकी रचना होनेके समय तक अनेक साधनोंका आविष्कार हो चुका था। उपनिषद् आत्मतत्वका विस्तारसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्णन कर चुके थे। महर्षि कपिल प्रकृति-पुरुषके विवेकसे मोक्षके सिद्धान्तको बतला चुके थे। मीमांसाशास्त्र समाज और धर्मके द्वारा प्रतिष्ठित विधि-विधानोंके नियमपूर्वक करनेसे स्वर्ग प्राप्त होनेका उपाय बतला चुका था। आठ अङ्गोंवाले योगके साधनसे प्रकृतिके बन्धनसे जीवको मुक्त होनेका मार्ग महर्षि पतञ्जलि बतला चुके थे। रागात्मिका भक्तिद्वारा सारे कर्मोंको परमात्माके लिये समर्पण कर देनेका रास्ता भी कई महर्षियोंद्वारा भारतीय जनताको बतलाया जा चुका था। इन सभीको गीतामें एक जगह इतनी सुन्दर और सरल भाषामें समझाया गया है कि यह एक अपूर्व निधि-सा प्रतीत होता है। इसमें गोता लगानेवाले अनेक रत्न पा लेते हैं।

इस ग्रन्थमें केवल ७०० श्लोक हैं तथा १८ अध्याय हैं। आकारमें इतनी छोटी होती हुई भी यह पुस्तक बहुत सम्मान तथा श्रद्धाकी दृष्टिसे देखी जाती है। विद्वान् लोग इसे कल्पवृक्ष या कामधेनु बतलाते हैं। यह भी उन्हींके समान विद्वानोंकी इच्छाओंको पूर्ण करती है। प्रायः सभी विद्वानों और आचार्योंने इसपर टीकाएँ और भाष्य लिखनेमें अपना गौरव समझा है। विश्वकी शायद ही कोई भाषा हो जिसमें इसका अनुवाद न हुआ हो। इसपर इतनी अधिक टीकाएँ और विविध भाषाओंमें इसके अनेक अनुवाद इसकी सार्वभौमताके गवाह हैं। इसके सिद्धान्त किसी एक खास समय या देशविशेषकी ही सम्पत्ति नहीं हैं; किन्तु वे सब समयों और सब देशोंके लिए समानरूपसे लागू होते हैं। वे हैं मानवमात्र ही क्या, प्राणिमात्रके सिद्धान्त। ज्ञानी, विद्वान् और सामान्य जनतक इसके द्वारा प्रकाशकी किरण प्राप्त कर सकते हैं। इसके उपदेश सभीको समानरूपसे अपील करते हैं।

भारतीय संस्कृतिने मानव-हितके लिये क्या योग दिया, यह यदि किसीको देखना हो तो उसे गीताका अध्ययन करना चाहिये। प्राणिमात्रमें समत्वकी भावना करना भारतीय संस्कृतिकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसके दर्शन गीतामें पद-पदपर होते हैं। सुख-दुःख, मान-अपमान, शत्रु-मित्र, शीत-आतप सभीको समान दृष्टिसे देखनेका पाठ यह गीता ही विश्वके संतप्त मानव-जगत्को दे रही है। स्वार्थसे ऊँचे उठकर परमार्थ-बुद्धि से कार्य करनेके लिये यह सभीको प्रेरित कर रही है। कामनाके दल-दलमें फँसा हुआ मानव संसारके कार्योंमें आसक्त हो दिन-रात अनेक कष्टोंको भोगता रहता है। जिस वस्तुसे हमें सुख मिलता है, उस वस्तुका न मिलना हमको दुःख भी निश्चय ही देता है। इसलिए यदि हमें दुःखका नाश करना हो तो सुखका भी परित्याग करना पड़ेगा। इनमेंसे एकका अभाव ही दूसरे को जन्म देता है। परम आनन्दकी प्राप्तिके लिये इन दोनों ही विरोधी भावोंको छोड़ना जरूरी है। यही गीताका मुख्य संदेश है। परन्तु गीता केवल आदर्शवादके महल ही हमारे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सामने उपस्थित नहीं करती, बल्कि वह इनकी व्यवहारिकता भी हमारे सामने रखती है। गीताने इन विरोधी भावोंको छोड़नेका एक मार्ग सुझाया है जिसपर सच्चे दिलसे चलनेपर अवश्य मनुष्य इनपर विजय पा सकता है। वह है किसी भी कार्य को करते समय मनुष्य उसके फलकी इच्छा न करे। यह फल पानेकी अभिलाषा ही मनुष्यको दुःख देनेवाली है। यह एक मानव-हृदयकी कमजोरी है कि जब वह किसी कामको आरम्भ करता है, तब पहले ही उसका फल प्राप्त करनेकी इच्छा अपन हृदयमें कर लेता है। यह भी जरूरी नहीं है कि प्रत्येक कार्यका फल मनुष्यको मिले ही। फल देना तो ईश्वरके हाथमें है। ऐसे मनुष्यको कार्यमें सफलता मिल जानेपर तो प्रसन्नता होती है, परन्तु इसके विपरीत यदि उसे सफलतानहीं मिलती है तो वह अपने मनमें बड़ा दुःखी होता है। गीताने इसीलिए कहा कि किसी भी कार्यको जब हम करते हैं तो फलकी इच्छा बिल्कुल नहीं करनी चाहिये। कर्म करना मनुष्यका कर्तव्य है। फल प्राप्त करना उसके हाथकी वस्तु नहीं है, इसलिये जिस चीजपर उसका अधिकार नहीं, उसकी इच्छा करना भी बिल्कुल ठीक नहीं। बस यही इन विरोधी भावोंको जड़से उखाड़नेकी रामबाण औषध है। इसके सेवनसे मनुष्य इस असाध्य रोग से मुक्त हो सकता है। गीतामें इसे निष्काम-कर्मयोग बतलाया है। इस प्रकार गीता कठिन-से-कठिन सिद्धान्तको सुलझाने के लिये सरल-से-सरल व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत करती है।

गीताके निर्माता—

वैसे तो इसको श्लोकोंके रूप में बनानेवाले महर्षि वेदव्यास हैं, परंतु इसके अन्दर वर्णित ज्ञान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने मित्र तथा भक्त अर्जुनको महाभारत-युद्धके अवसरपर दिया था। श्रीकृष्ण भगवान् परमात्माके सोलह कलापूर्ण अवतार माने जाते हैं। उन्होंने गीताके ज्ञानको स्वयं पूर्णरूपसे अनुभूत कर लिया था तथा उसे व्यवहारिक रूप प्रदान किया था। आजकलके उपदेशकोंकी भाँति उनके कथन और कर्ममें भिन्नता नहीं थी। मनमें जो बात होती थी, वही वे शब्दों के द्वारा कहते थे तथा कही हुई बात पर खुद भी अमल करते थे। विद्वानों की यह धारणा है कि हजारों वर्षोंमें ऐसा कोई महापुरुष विश्वके इतिहासमें दिखायी नहीं पड़ता जिससे श्रीकृष्णकी तुलना की जा सके। एक महापुरुषमें जितने गुण अपेक्षित हैं, भगवान् श्रीकृष्णमें सभी पूर्णमात्रामें मिलते हैं। श्रीकृष्णको योगिराज कहा जाता है। इन्होंने शक्तिके ऐसे-ऐसे अपूर्व कार्य बचपनमें ही कर दिखाये जो बालकोंके लिये अनु-करण करने योग्य हैं। इनमें शरणागत-रक्षा, मित्र-प्रेम, राजनीति-पटुता आदि गुण कूट-कूटकर भरे पड़े थे। इतने महान् पुरुष होते हुए भी वे अभिमानसे बिल्कुल रहित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

थे। महाभारतके युद्धमें विजय होनेके पश्चात् भी उन्होंने पाण्डवोंसे किसी प्रकारके बदलेकी इच्छा नहीं की। न किसी प्रकारका सम्मान ही उनसे प्राप्त करना चाहा। आजकल मनुष्य यदि थोड़ा सा भी किसीका उपकार कर देते हैं तो वे उससे तुरंत बदला लेना चाहते हैं। बदला न चाहनेवालेको ही कहते हैं— कर्मयोगी। निष्काम कर्मकी शिक्षा देनेवालेको स्वयं भी तो निष्काम होना चाहिये।

यद्यपि कुछ लोग भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रपर आक्षेप करते हैं। वे श्रीमद्भागवतके आधार पर भक्तोंके द्वारा प्रचारित श्रीकृष्णकी प्रेम-लीलाओंके कारण श्रीकृष्णको विलासी सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। पर ठीक नहीं। वे एक पूर्ण महा-पुरुषके रूपमें ही उसमें चित्रित किये गये हैं। श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्णके विषयमें प्रेमलीलाओंका जो वर्णन मिलता है, उसका भी एक रहस्य है और साधारण मनुष्य उस रहस्यको न समझकर झट श्रीकृष्ण पर विलासी होनेका आक्षेप कर डालते हैं। वास्तवमें गोपियोंके साथ श्रीकृष्णकी जो लीलाएँ वर्णित हैं उनका अर्थ है ब्रह्मका जीवात्माके साथ क्रीड़ा या मनका इन्द्रियोंके साथ विहार। श्रीकृष्णकी चीरहरण लीलाका तात्पर्य है श्रीकृष्ण इन्द्रियोंके वस्त्र (अज्ञान) को हरनेवाले थे। ज्ञानके बलसे इन्द्रियों पर श्रीकृष्णका पूर्ण नियन्त्रण था और वे इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर उत्पन्न होनेलाले सुख-दुःखके वशीभूत नहीं होते थे। उनके जीवनमें 'समत्व योग' का पूर्ण प्राकट्य था। इस प्रकार वे पूर्ण इन्द्रियविजयी थे। साधारणलोग वास्तविक अर्थका ज्ञान न रखनेके कारण श्रीकृष्ण-जैसे महापुरुषके चरित्रपर भी लाञ्छन लगाने की कुचेष्टा करते हैं। वास्तवमें श्रीकृष्णका अर्थ है—सारे पापोंको हरणकरनेवाला। संस्कृतकी कृष (विलेखने) धातुसे यह शब्द बना है। उसी प्रकार राधा भी किसी साधारण स्त्रीका नाम नहीं है, भगवान्‌की अपनी शक्तिका नामही राधा है। राधा भगवान्‌की अपनी स्वरूपभूता मायाके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं। इसका पुराणोंमें खूब विवेचन किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गीता-जैसा ज्ञान देनेवाला महापुरुष कदापि लाञ्छित चरित्रवाला नहीं हो सकता।

निर्माणका समय

वैसे तो यह ज्ञान अनादि और अनन्तकालसे चला आता था परंतु फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण ने यह ज्ञान अपने मित्र अर्जुनको महाभारत युद्धके समय फिरसे बत-लाया था। कौरव और पाण्डव परस्परमें चचेरे भाई थे। उनमें पाण्डव सीधे-सादे और धर्मके पथका अनुसरण करनेवाले थे। इसके विपरीत कौरव दुष्ट प्रकृतिके और अन्यायपर उतारू थे। कौरवोंने पाण्डवोंका राज्य छल-कपटसे छीन लिया तथा इन्हें १३ वर्षके लिये देशनिर्वासित कर दिया। १३ वर्ष बीतनेपर भी जब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पाण्डवोंने अपना राज्य उनसे वापिस माँगा तो कौरवोंके देनेसे इनकार करनेपर महाभारतका युद्ध छिड़ गया। दोनों दलोंकी सेनाएँ युद्ध-स्थलमें लड़नेके लिये सुसज्जित खड़ी हुई थीं। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि थे। अर्जुनने अपना रथ दोनों सेनाओंके बीचमें ले जाकर खड़ा करनेके लिये श्री कृष्णसे कहा। अर्जुन उस समय दोनों तरफसे लड़नेके लिये प्रस्तुत अपने सगे-सम्बन्धियोंको देखकर मोहित हो गया और भगवान श्रीकृष्णसे हाथ जोड़कर कहने लगा--'हे कृष्ण! तीनों लोकोंका राज्य भी यदि मुझे मिलता हो तो भी मैं अपने इन सम्बन्धियोंको नहीं मार सकता।' यह अर्जुनका मोह उसे कर्तव्यसे च्युत कर रहा था। कर्तव्यसे च्युत होना मनुष्यके लिये सबसे बुरी बात है। कर्तव्य-भावनाकी कमी ही सब पापोंका मूल है। भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत अर्जुन की कमजोरी को समझ गये और उसे कर्तव्यसे च्युत होते देख वास्तविक ज्ञान का उपदेश करने लगे। ज्ञानोपदेशका वास्तविक स्थल वही है जहाँ मनुष्य कर्तव्यच्युत हो उन्मार्गगामी या अकर्मण्य बन रहा हो। अर्जुनके सामने भी ऐसी ही समस्या थी, जिससे वह अकर्मण्य होकर जीवनको अन्धकारमें डाल रहा था। परन्तु अर्जुनको ज्ञानका सच्चा अधिकारी समझकर भगवान् श्रीकृष्णने उसे वह ज्ञान दिया जो संसारकी अकर्मण्यताको सदाके लिये नष्ट करने में समर्थ हुआ। कहते हैं कि युद्ध समाप्त होनेपर एक दिन अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा--'महाराज! आपने मुझे महाभारत युद्धके समय जो गीताका ज्ञान दिया था उसे मैं भूल गया। एक बार पुनः उस ज्ञानका उपदेश मुझे दे सकें तो आपकी बड़ी दया हो।' इसपर श्रीकृष्ण ने कहा--'उसी समय तुम उस ज्ञानके अधिकारी थे अर्जुन!' भगवान्ने वास्तवमें यह बात बड़ मार्केकी कही; क्योंकि अनन्य चित्त शरणागत मनुष्य ही सच्चे ज्ञानका अधिकारी हो सकता है।

गीताका विषय

गीताके अन्दर कर्म, ज्ञान और भक्तिकी त्रिवेणी समानान्तर रेखामें प्रवाहित हो रही है। कोई इसे केवल कर्मका माहात्म्य बतलानेवाला ग्रन्थ सिद्ध कर सकता है, न कोई इसे भक्तिका ही ग्रन्थ बतला सकता है और न इसमें केवल ज्ञानका ही वर्णन है। इसमें तो इन तीनोंकी ही धाराएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं; परन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि जिस तरह त्रिवेणी में गङ्गाकी धारा ही प्रबल तथा अधिक वेगवती है वैसे ही इसमें भी कर्मकी धारा ही प्रबल दिखायी पड़ती है। वास्तवमें इनमें से तीनों पक्ष ही मानव-जीवन की सार्थकताके लिये नितान्त अपेक्षित हैं। इसलिये गीता-जैसे विश्वहितकी भावनासे ओतप्रोत ग्रन्थमें इन तीनोंका ही समन्वय होना अत्यन्त जरूरी था। ज्ञानशून्य कर्म मनुष्यको पतनकी तरफ खींच सकते हैं और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्मशून्य ज्ञान मनुष्यको निकम्मा बना डालता है। इन दोनोंके होने पर भी यदि मनुष्य में हृदय नहीं हो तो उसका जीवन नीरस ही रहता है, अतः जीवन में सरसता लानेके लिये इन दोनों के साथ भक्तिका मिलान भी बड़ा आवश्यक है। इन तीनोंके होनेपर ही मानव-जीवनका सन्तुलन बना रहता है। गीतामें इन तीनोंके विवेचनके साथ मानव-जीवनको आनन्दमय बनानेके अत्यन्त सुन्दर उपाय सुझाये गये हैं जिनका मनन तथा आचरण करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। इसमें आध्यात्मविषयोंके प्रतिपादनके साथ-साथ व्यावहारिक विषयोंका भी सुन्दर तथा विशद विवेचन किया गया है।

कर्मयोग—गीता के अनुसार तीन तरहके कर्म बतलाये गये हैं। वे हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। शुद्धचित्तसे प्राणियोंके हितकी भावना या कर्तव्य बुद्धिसे जो कर्म किये जाते हैं उन्हें सात्त्विक कर्म कहा जाता है। अहंकार-पूर्वक किसी कामना-विशेष से जो कर्म किये जाते हैं वे राजसिक कर्म कहे जाते हैं। दूसरोंका अनिष्ट तथा अपना पतन करनेवाले कर्म तामसिक कर्म हैं। क्या गीताके अनुसार तीनों प्रकारके कर्म ही मनुष्यको करते रहना चाहिये? नहीं, कदापि नहीं। गीता इस विषय में स्पष्ट कहता है कि मनुष्यको कर्मके फलका त्याग करना चाहिये और तब कर्मको कर्तव्य बुद्धिसे ईश्वरकी आज्ञा मानकर करना चाहिये। जब मनुष्य फलका त्याग कर देता है तो स्वभावसे ही उसके राजसिक और तामसिक कर्म छूट जाते हैं। फलकी इच्छा न रहनेपर मनुष्यमें कर्म करते समय अहंभाव स्वतः ही नष्ट हो जाता है। साथ ही मनुष्यके हृदयमें कामना भी नहीं रहती। ऐसी परिस्थितिमें उसका काम्य कर्मोंसे अपने-आप ही हट जाना सिद्ध हो जाता है। बुरे कर्म तो होते ही नहीं, फल न चाहनेवाला आदमी बुरा कर्म क्यों करने लगा? इस प्रकार उसकी प्रवृत्ति राजसिक और तामसिक कार्योंकी तरफ अपने-आप ही नहीं रहती है। केवल कर्तव्य-कर्म ही उसके लिये इस संसारमें शेष रह जाते हैं। उन्हें ही वह संसार-यात्रा चलाने के लिये बिलकुल अभिमानरहित होकर करता रहता है। इसी फल पानेकी इच्छाको गीता में वासना या कामना नामसे भी पुकारा गया है। गीताके अनुसार कर्मोंका छोड़ना बिलकुल असंभव बात है। कर्म करना तो प्राणिमात्रका प्राकृतिक धर्म है। उससे छुटकारा कैसे पाया जा सकता है। हाँ, उसका फल छोड़ा जा सकता है। बहुत-से मनुष्य कर्मेन्द्रियोंको रोककर यह दम्भ किया करते हैं कि हमने कर्मोंका परित्याग कर दिया, परन्तु वे मनको कर्मोंकी तरफ भागने से नहीं रोक सकते हैं। अतः मनको रोके बिना केवल कर्मेन्द्रियोंसे कार्य न करनेको ही संन्यास समझनेवाले मनुष्य दुनिया को धोखा देते हैं। शरीर ही सब पुण्योंकी जड है। वह भी तो बिना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्म किये नहीं टिक सकता है। फिर कर्म-त्यागमें कौन-सा महत्त्व है? विशेषता तो इस बातमें है कि मनके द्वारा इन्द्रियोंको वशमेंरखते हुए मनुष्य अनासक्त भावसे कर्मेन्द्रियोंके द्वारा कर्म करता रहे। जैसे जलमें रहते हुए भी कमलका पत्ता जलसे लिप्त नहीं होता है, वैसे ही मनुष्य कर्तव्यकर्म अवश्य करे, उनको कभी स्वप्नमें भी छोड़नेका विचार न करे, परन्तु उनसे किसी फलकी इच्छा न करे। इस बातको कहना जितना सरल है, करना उतना ही कठिन है; परन्तु अभ्यासके द्वारा मनुष्य कठिन-से-कठिन कार्य भी कर सकता है।

यह कर्मोंके फलोंका त्याग करना बड़ी महत्त्वपूर्ण चीज है। इसके अभ्यास करनेपर कभी मनुष्यके हृदयमें बुरी वासनाएँ उत्पन्न हो ही नहीं सकतीं। यह आत्मोन्नतिका महामन्त्र है। इसके अभ्यास से अपूर्व आनन्द का लाभ होता है जो शायद मोक्षके आनन्दसे किसी भी अंशमें न्यून नहीं है। इस आसक्ति योगका अभ्यासकर लेनेपर मनुष्यको कभी भी दुःख नहीं भोगने पड़ते। वह तो साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही बन जाता है। इसके उदाहरण जनक आदि हैं जो इसी जीवनमें सांसारिक कर्म करते हुए भी मुक्त थे। वास्तवमें कर्तव्य-कर्मका परित्याग कभी किसीको करना भी नहीं चाहिये। संसारके संचालनके लिये कर्म तो सभीको करते ही रहना चाहिये। इतना अवश्य है कि मनुष्य कर्मको कर्तव्य-बुद्धिसे करे, फल-भोगका लिप्सासे नहीं। भगवान् श्रीकृष्णने कर्मयोगका सारा महत्त्व नीचेवाले एक श्लोकमें ही समझा दिया है---

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् हे मानव! कर्म करना ही तेरा अधिकार है, उसका फल देनेवाली कोई दूसरी ही शक्ति है। उसका फल वह दे या न दे, परंतु तुमको उसका कार्य अपने हाथमें लेनेकी व्यर्थ अनधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिये। इसलिये न तो तू कर्मके फलके लिये लालायित हो और न कर्मका परित्याग कर, किन्तु कर्तव्य-बुद्धिसे फलकी इच्छा न करता हुआ कर्म करता ही जा।

कर्मयोगका सार इसी एक श्लोकमें समझा दिया गया है। आसक्तिका परित्याग कर देनेपर कर्मसे कोई बुराई पैदा होनेकी तनिक भी आशंका नहीं रहती। गीताका यह सर्व-मान्य सिद्धान्त है कि प्राणीको कर्मका त्याग कभी भी नहीं करना चाहिये; किन्तु उस कर्मसे मिलनेवाले फलकी इच्छाको छोड़ देना चाहिये। कुछ विद्वानोंने काम्य कर्मों का छोड़ना ही संन्यास बतलाया है परन्तु गीता कहती है कि सब कर्मों के फ़लका त्याग ही संन्यास है। फल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्यागनेपर काम्य कर्म तो स्वतः नष्ट हो जाते हैं। कामनाके मूलमें फल ही तो काम करता है। जब वह समूल उखड़ गया तो कामना कैसे टिक सकती है? फिर काम्य कर्मका प्रश्न ही नहीं उठता। साथ ही काम करनेवालोंको 'मैं यह काम करता हूँ' यह अभिमान भी छोड़ देना चाहिये। सारा संसार त्रिगुणरूप प्रकृतिका दास है। वह इच्छानुसार सबसे कर्म करवाती है। तब करनेवालेका "मैं करता हूँ" यह अभिमान कहाँ? सारे कार्योंको भगवान् के अर्पण कर देना चाहिये। कोई भी कर्म निजकी इन्द्रियोंकी तृप्तिके निमित्त न करके भगवान्के लिये करनेपर मनुष्य फल-बन्धनमें नहीं फँसता है। मूर्ख और विद्वान्का कार्य करनेकी शैलीमें यही एक बड़ा भारी अन्तर है कि मूर्ख किसी कामको आसक्तिपूर्वक करता है और ज्ञानी उसी कामको कर्तव्य समझकर निरीह भाव से करता है। उसकी दृष्टि केवल लोकसंग्रहपर रहती है। लोकसंग्रह शब्द भगवान्ने लोककार्योंको ठीक-ठीक तरहसे करते रहनेके लिये प्रयुक्त किया है।

संक्षेपमें कर्मयोगका सार यह है---

(१) प्रमाद-आलस्यके कारण फलकी इच्छा न करना और कर्म न करना। यह बुरा मार्ग है और इसपर साधारण कोटिके मनुष्य चलना चाहते हैं।

(२) फलकी इच्छासे कर्म करना। यह सकाम कर्म मनुष्यको बन्धनमें डालनेवाला है।

(३) आसक्ति न रखना, फलकी इच्छा नहीं करना और सिद्धि-असिद्धिमें समबुद्धि रहना परंतु कर्म करते रहना। यही गीताका मान्य कर्मयोगका सिद्धान्त है। इसके प्रतिपादनकी ही गीताकी विशेषता है।

ज्ञानयोग---गीताका ज्ञानयोग मनुष्यको अकर्मण्य बनाने वाला कर्म-संन्यासियोंका ज्ञानमात्र नहीं है किन्तु कर्मयोगका सहायक है। ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों तत्त्वोंको एक दूसरेसे पृथक नहीं किया जा सकता। कुछ साधक कर्मकी तरफ ही झुके हुए हैं, कुछ लोग भक्तिपर ही अधिक जोर देते हैं और कुछ लोग ज्ञानके ही उपासक हैं, परंतु गीता इन तीनों का अस्तित्व मानवजीवनकी उपयोगिताके लिये अत्यन्त आवश्यक समझती है। पक्का कर्मयोगी बननेके लिये उसे ज्ञान और भक्तिकी सम्मिलित साधनाकी जरूरत है। ज्ञानी पुरुष ही अपने अन्दर निष्कामभावको प्रश्रय दे सकता है। तथा बिना भक्तितत्त्वके कर्मोंको ईश्वरके अर्पण नहीं किया जा सकता। इसलिये कर्मयोगके सच्चे साधकमें ये दोनों तत्व समानतया अपेक्षित हैं। ज्ञान-योग अन्य शास्त्रोंके ज्ञानमार्गसे थोड़ा विलक्षण है। ज्ञानवादी ज्ञानको मोक्ष प्राप्त करनेका साधन बतलाते हैं तथा उनका वह ज्ञान प्रकृति-पुरुषका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ज्ञान ही है। परंतु गीताके अनुसार सारे प्राणियोंमें आत्माके दर्शन करना तथा आत्मामें सारे प्राणियों को देखना ही सच्चा ज्ञान है। जो मनुष्य इन दो बातोंको सम्यक् प्रकारसे समझ लेता है वह प्राणिमात्रमें समदर्शी बन जाता है। समदृष्टि होना एक बहुत बड़ा गुण है जो मानवको बहुत ऊँचे धरातल पर विराजमान कर देता है। अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णने अपना विराट रूप दिखलाकर अपने अंदर सब भूतोंके दर्शन कराये थे। जो सारे प्राणियोंको भगवान् के अन्दर ही देखता है, उसकी दृष्टिमें भगवान्के अतिरिक्त संसारमें कोई वस्तु ही नहीं है। तथा जो सारे चराचरमें भगवान्के दर्शन करता है उसके लिये भी सारा संसार ही भगवान् है। उसीको कर्म, मन, वचनसे संतुष्ट रखना भगवान्की सबसे बड़ी सेवा है। इस प्रकारकी दृष्टिवाला मनुष्य कभी किसीके अहितकी भावना अपने मन में रख ही नहीं सकता; क्योंकि किसी भी प्राणीसे द्वेष करना भगवान्से ही द्वेष करना है। उसके लिये चींटी से लेकर हाथी तक समस्त जीव समान ह तथा सभी भगवान्के ही रूप हैं। वह किसीमें तुच्छता या महत्ता उच्चता या नीचताकी भावना नहीं रखता। वह जैसे एक विद्वान् वेदपाठी ब्राह्मणको भगवानका रूप समझता है वैसे ही एक चाण्डालको भी उसी भगवान्की मूर्ति समझता है। कितना ऊँचा आदर्श है। परन्तु समदृष्टिका अर्थ समव्यवहार नहीं है। अगर कर्मयोगी मनुष्य चाण्डालका-सा बर्ताव करने लगे तो फिर वह लोक-मर्यादा भंग करनेका अपराधी बन जाता है, जिसका पालन करना प्रत्येक मनुष्यका परम धर्म है।

सच्चा ज्ञानी मनुष्य अपने मन तथा इन्द्रियोंको हमेशा वशमें रखता है। जिस प्रकार जलसमूह अगाध समुद्रकी अचलता तथा स्थिरताको भंग नहीं कर सकते हैं, वैसे ही कामनाएँ ज्ञानीके अविचल मनको कभी चंचल नहीं कर सकती। वह कभी अभिमान नहीं करता है तथा किसी के प्रति भी ममता नहीं रखता है। वह कभी विषयोंका चिन्तन नहीं करता है; क्योंकि विषयोंका चिन्तन करनेवालेका चित्त जरूर उनमें आसक्त हो जाता है। आसक्ति ही कामनाकी जननी है। किसी वस्तुकी कामना पैदा होनेपर उसकी प्राप्ति न होनेपर क्रोध आना स्वाभाविक है। क्रोधका फल है मोह और मोहसे स्मरणशक्ति मन्द पड़ जाती है। स्मरणशक्तिकी मन्दता मनुष्यकी बुद्धिको नष्ट कर डालती है। बुद्धिनष्ट हुई कि मनुष्यका सर्वनाश हुआ। इसलिये विषयोंकी आसक्ति छोड़कर मनुष्य निश्चय ही आनन्द प्राप्त करता है। आनन्दकी अवस्थामें सब दुःख स्वतःदग्ध हो जाते हैं। चित्तकी प्रसन्नतासे मनुष्यकी बुद्धि भी स्थिर हो जाती है। इन्द्रियोंको अपने-अपने विषयोंसे रोक लेनेपर मनुष्यकी बुद्धि स्थिर हो सकती है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विषय हैं। कानका विषय है शब्दश्रवण, त्वक्का विषय है स्पर्श, जिह्वाका विषय है रस लेना, नेत्रका विषय है देखना और नासिकाका विषय है सूँघना। इन इन्द्रियोंको अपने-अपने विषयोंसे रोकनेसे मनुष्यमें तितिक्षा-शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिससे वह सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, मान-अपमान और जय-विजयको समान समझने लग जाता है। परिणाम यह होता है कि वह सारे विश्वके साथ मित्रताका व्यवहार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करने लगता है। वह सच्चा ज्ञानी बनकर कर्मयोगके साधनमें लीन हो सकता है। कर्मयोगीको ज्ञानकी सहायताकी नितान्त आवश्यकता है। बिना उसके कर्मकी साधना अधूरी रह जाती है। इस प्रकार गीताका ज्ञानयोग कर्मयोगका सहायक है। वह मनुष्यका निष्क्रिय बनानेवाला ज्ञान नहीं है। उसके द्वारा यथायोग्य कर्म होते हैं, परंतु कोई उनमें अहंकारी नहीं रह जाता। यही ज्ञान है।

भक्तियोग--भक्तियोग भी निष्काम कर्ममें सहायक ही है। मनुष्य जबतक किसी भी कर्मको स्वार्थ-बुद्धिसे करता है तबतक वह उसके फलकी इच्छाका परित्याग नहीं कर सकता है। फलकी इच्छाका त्याग करनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य जो भी कर्म करे उसे ईश्वरको अर्पणकर दें। उसकी यह भावना रहनी चाहिये कि मैं प्रत्येक कर्म अपने स्वामीकी सेवाके लिये करता हूँ। मैं तो केवल एक सेवकमात्र हूँ। मेरा कोई भी कार्य अपने निमित्त नहीं है। मेरे सभी कार्य अपने इष्टदेवता की प्रसन्नताके लिये ही हैं। ऐसा सोच लेने पर मनुष्य स्वतः फलभोगकी इच्छा छोड़ देता है। कर्ममें सौन्दर्य लानेके लिये यह भावना नितान्त जरूरी है। ज्ञान तथा कर्मके साथ भक्तिको भी मिलाकर गीताने एक महान् कार्य किया है। गीताज्ञानरूपी वृक्ष भक्तिरूपी मधुर फलसे लदा हुआ है। यह भक्तिका रहस्य अत्यन्त गुप्त तथा सब विद्याओंका राजा है। ज्ञानकी पूर्णता भी भक्तिके बिना सम्भव नहीं। भगवान् श्रीकृष्णने विराट् रूपके दर्शन करवाकर अन्तमें अपने भक्त अर्जुनसे स्पष्ट शब्दोंमें बतलाया कि मेरे (भगवान्के) इस रूपके दर्शन भक्तिके बिना सर्वथा असम्भव हैं। न तपसे, न यज्ञसे और न वेदसे ही भगवान्के दर्शन सम्भव हैं। वे तो केवल अनन्य भक्तिके द्वारा सम्भव हैं। इसीके द्वारा भगवान्के दर्शन किये जा सकते हैं। उसको जानने तथा एकता प्राप्त करनेके लिये भक्ति ही एकमात्र मनुष्यको सहायक है। उस अनन्य भक्तिकी प्राप्ति मनुष्यकी कैसे हो सकती है इसका विवेचन गीताने यों किया हैं--

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

अर्थात् जो मनुष्य सारे कर्म भगवान्के ही लिये करता है, जो भगवान्को ही एकमात्र अपना शरण्य समझता है, जो भगवान्का ही भक्त है, जो विषयोंमें आसक्ति नहीं रखता है और जो कभी किसी प्राणीसे द्वेष नहीं करता है, वह भगवान्का अनन्य भक्त समझा जाता है।

भक्ति भी कर्मोंकी भाँति सकाम तथा निष्काम होती है; परन्तु निष्काम भक्ति ही श्रेष्ठ भक्ति है। चार प्रकारके भक्त गीता बतलाती है--आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी, परन्तु इनमें पहले तीन भक्त कामनाका परित्याग नहीं कर सकते, इसलिये वे नीची कोटिके भक्तोंमें गिने जाते हैं। ज्ञानी अर्थात् निष्काम भावसे भगवान्की भक्ति करनेवाला मनुष्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तो भगवान्‌की ही आत्मा है। भगवान् समद्रष्टा होते हुए भी भक्तोंपर स्नेह रखते है। अथवा भक्त तो भगवान्‌के ही रूप बन जाते हैं। दुराचारी मनुष्य भी यदि अनन्य भावसे भगवान्‌की भक्तिमें लीन हो जाता है तो वह श्रेष्ठ ही समझा जायेगा। वास्तवमें भगवद्-भक्तिरूपी अग्निसे मनुष्यका पाप-वासनारूपी तृणसमूह अपने-आप जल जाता है। भक्तिकी पहिचान क्या है? वह किसी प्राणीसे भी द्वेष नहीं करता, बल्कि प्राणिमात्रपर करुणा करता है और उनसे मित्रवत व्यवहार करता है। वह कभी स्वप्नमें भी अभिमान और ममताको अपने पास नहीं आने देता। वह सुख-दुःखको समान समझता है। कभी किसीपर क्रोध करना तो वह जानता ही नहीं। वह हमेशा अपनी वर्तमान परिस्थितिसे सन्तुष्ट रहता है तथा कर्तव्य कर्ममें सदा बिना फलकी लालसाके लगा रहता है। वह अपने मन तथा इन्द्रियोंको अपने नियन्त्रणमें रखता है। जिस किसी भी कार्यको वह करता है उसे दृढ़ निश्चयसे करता है तथा हरदम परमात्माका ही चिन्तन करता है। उससे किसीको भी किसी प्रकारका क्लेश नहीं होता। न वह संसारसे उद्विग्न ही होता है। उसे कभी भी हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग नहीं होते हैं। वह किसी भी कार्यके लिये किसीकी जरूरत नहीं समझता है। उसके बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों पवित्र होते हैं। वह किसी भी कार्यको आलस्यके वशीभूत होकर छोड़ता नहीं है। फलके प्रति वह उदासीन रहता है। उसके चित्तको कोई भी विकार विकृत नहीं कर सकते हैं। वह न कभी विषयोंमें हर्ष मानता है, न किसीसे द्वेष करता है, न शोक करता है और न इच्छा करता है। वह कर्मके सभी शुभ या अशुभ फलोंको छोड़ देता है। वह शत्रु और मित्र, मान और अपमान, सर्दी और गरमी तथा सुख और दुःखको समान समझता है। न उसे निन्दा या स्तुतिकी परवा है। वह परिमित बात करता है। वह जो कुछ मिल जाता है उसीसे सन्तुष्ट रहता है तथा कभी कर्मके फलकी आशा नहीं रखता। इन लक्षणोंसे भक्तकी पहिचान की जाती है। ये दुर्लभ गुण आ जानेपर मनुष्य कितना जीवनके समुन्नत धरातलपर पहुँच जाता है यह कल्पना साधारण मनुष्य नहीं कर सकता है।

ध्यानयोग––कर्म, ज्ञान, भक्ति के साथ-साथ ध्यान-योगपर गीता बहुत जोर देती है। योगीको तपस्वियों, ज्ञानियों और कर्मकाण्डवालोंसे भी श्रेष्ठ बतलाया गया है। योगी ही कर्म को निष्काम भावसे कर सकता है। योगी वही श्रेष्ठ समझा जाता है जो सारे प्राणियोंको अपने ही समान समझता है। तथा सबके सुख-दुःखको एक दृष्टिसे देखता है। इसी साम्यका नाम ध्यानयोग है। इसके बिना मानवका समुन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर चढ़ना अत्यन्त असम्भव है। इसका चित्त वैसे ही निश्चल (स्थिर) हो जाता है जैसे वायुसे रहित स्थानपर दीपक। इस दशाकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको अपने मनको वशमें करना पड़ता है। यद्यपि मनको वशमें करना वायुको रोक रखनेके समान बहुत कठिन है परन्तु अभ्यासके द्वारा सभी कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं। यह सफलता-प्राप्तिका महामंत्र है। आत्मशुद्धिका यह अमोघ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपाय है। पवित्र स्थानपर आसन लगाकर चित्त तथा इन्द्रियोंकी क्रियाको रोककर चित्तको एकाग्र करने से आत्माको शान्ति मिलती है। इसके लिये ब्रह्मचर्यपालन भी आवश्यक है। इसके अभ्याससे मनुष्य मनपर काबू पा लेता है और फलस्वरूप कार्यसिद्धिमें सफलता या असफलताकी भावनाका परित्याग कर लग जाता है। इसका अभ्यास कर लेनेपर मनुष्यमें अवश्य समत्व बुद्धिका उदय हो जाता है। वह लोह और सुवर्णको एक दृष्टिसे देखता है। सिद्धिका यह एक स्वरूप है। मानवीय गुणोंकी प्राप्ति के लिये इसका अभ्यास बहुत लाभदायक है। ब्रह्मचारीके लिये विद्याध्ययन कालमें ही इस गुणको प्राप्त करनेका अभ्यास डालना चाहिये ताकि अध्ययनरूपी योगकी सिद्धि सरलतासे हो सके। साथ ही भावी जीवन-संघर्षमें भी सफलता इसे वरण करनेके लिए तैयार रहे। कर्मयोगीके लिये इस ध्यानयोगका बड़ा महत्व है।

सभीका समन्वय——गीतामें उपर्युक्त चारोंको ही एक साधना-मार्गके पथिकके लिये अत्यन्त आवश्यक बतलाया है। इनमेंसे एकके भी न होनेपर साधक पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

गीताके अनुसार कर्म, ज्ञान, भक्ति और ध्यान अलग-अलग लक्ष्योंके प्राप्त करनेके साधन नहीं है, किन्तु ये सभी एक ही लक्ष्यकी पूर्तिके साधन हैं और इन सबका एकत्र ही होना ज़रूरी है। गीताने प्रारम्भ कर्मयोगसे किया है तथा अन्त भक्ति-शरणागतिमें किया है। निष्काम कर्म करनेसे और नियमपूर्वकध्यान योगके अभ्याससे मनुष्य ब्रह्मरूप बन जाता है और इस स्थितिमें वह प्रसन्नचित्त हो सारे प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखता हुआ ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर लेता है। यों धीरे-धीरे उसका चित्त विशुद्ध तथा आदर्श ईश्वर भक्तिमें लीन स्वभावतः ही हो जाता है और वस्तुतः वह निरभिमान हो परमज्ञानका अधिकारी बन जाता है। इसके फलस्वरूप उसे ईश्वरकी प्राप्ति हो जाती है। यही गीताका गुप्त ज्ञान है। भगवान्की शरणमें चले जाना ही गीताके ज्ञानका सार है। सारे कर्मोंको ईश्वरकी आज्ञा समझकर मनुष्य करता रहे। उन्हें अपने सुख-भोगके लिये कभी न करे।

स्थितप्रज्ञ——इन साधनोंके फलस्वरूप मनुष्य बिलकुल अभिमानशून्य हो जाता है और सारे संसारको समान दृष्टिसे देखने लगता है। ये सब समत्वबुद्धि—प्राप्तिरूपी साध्यके ही साधन हैं। जिसको यह समत्वबुद्धिकी प्राप्ति हो जाती है वही पुरुष स्थितप्रज्ञ कहलाता है। उस पुरुषकी गीताने बड़ी प्रशंसा की है। उस पुरुषमें निम्नलिखित विशेषता स्वभावतः होनी चाहिये—किसी प्राणीसे कभी स्वप्नमें भी द्वेष न करना, प्राणीमात्रसे मित्रताका व्यवहार करना, सबसे निःस्वार्थ प्रेम करना, कभी अहंकार न करना, सुख और दुःखको समान दृष्टिसे देखना, सदा शान्तिचित्त रहना, प्राणिमात्रपर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दया करना, मनकी सारी कामनाओंका परित्याग कर देना, हमेशा प्रसन्न-चित्त रहना, सुख-प्राप्तिकी कभी इच्छा न करना और दुःखोंसे घबराना नहीं, क्रोध और भयका बिलकुल परित्याग कर देना, ममताको बिलकुल छोड़ देना और शत्रु तथा मित्रभावसे बिलकुल दूर रहना। इन गुणोंके आनेपर मनुष्य पूरा स्थितप्रज्ञ कहलाता है। मानव-जीवनका यही आदर्श है। जीवन सफल है या नहीं--यह परखनेकी यही सबसे बड़ी कसौटी है। यह बहुत ही ऊँचा आदर्श है। मानव-जीवनकी कोई भी स्थिति इससे सुन्दर और सुखद हो नहीं सकती।

गीता-ज्ञानकी उपयोगिता—गीतामें जो ज्ञान भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको दिया है वह वास्तवमें केवल किसी एक देश, समाज या जातिविशेषके लिये ही उपयोगी नहीं है, किंतु वह प्रत्येक मनुष्यके लिये समान रूपसे हितकर है। इसमें प्राणिमात्रको समान दृष्टिसे देखते हुए निष्काम भावसे कर्म करते रहनेका जो उपदेश दिया गया है, वह मानव क्या प्राणिमात्रके हितकी भावनाको जागृत करता है। इस प्रकारके ज्ञानकी हर समय और हर देशके मनुष्यको जरूरत है। यह सार्वभौम ज्ञान भारतीय शास्त्रोंका निचोड़ है। भारतीय ज्ञानका यह व्यावहारिक पक्ष है जिसका प्रतिपादन गीताने किया है। भारतीय सदा ही प्राणिमात्रको समान दृष्टिसे देखते आये हैं। गीता ने भी वही प्राचीन भारतीय संदेश विश्वको दिया है। इसीलिये विद्वानोंने गीताको विशेष महत्त्व दिया है। भारतीय संस्कृतिके अंग होते हुए भी इसके सिद्धान्त मनुष्यमात्र के सिद्धान्त हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का प्रचारक यदि कोई ग्रन्थ है तो वह गीता है। और उसका उत्पत्तिस्थान है भारत।

गीताका दर्शन——कुरुक्षेत्रके रणक्षेत्रको लोकका प्रतीक मानकर अर्जुनके निमित्त से मनुष्यमात्रको त्याग और कर्मसे समन्वित आदर्शको समज्ञानाही गीताका मुख्य दार्शनिक तत्त्व है। गीताके पहले ब्राह्मण ग्रन्थोंमें प्रवृत्तिमार्गका विधान था और उपनिषदोंमें निवृत्ति-मार्गका प्रतिपादान था। प्रवृत्तिका अर्थ है अनुरागपूर्वक काम करना और निवृत्तिका अर्थ है वैराग्यपूर्वक कर्मोंका परित्याग। दोनों ही मार्ग सनातन हैं; परंतु एकपक्षीय और अतिवादी हैं। सानुराग कर्म कामनासे उत्पन्न होता है और सार्थभाव जागृत करता है। फलस्वरूप अभिमान पैदा कर देता है जिसका नतीजा होता है आत्माका बन्धन। इससे आत्माकी शांति भी भंग होती है। इस प्रकार प्रवृत्ति-मार्ग सारे बन्धनोंका कारण तथा अशान्तिका जन्मदाता है, अतः यह मार्ग कभी लोकका कल्याण करनेवाला नहीं हो सकता। रहा निवृत्तिका मार्ग-सो वह भी सामाजिक कर्तव्यसे मनुष्यको च्युत करके अकर्मण्य बना देता है, अतः किसी भी प्रकार उपयोगी नहीं कहा जा सकता है। संसारके कर्मोंका परित्याग एक प्रकारका दम्भ है। वस्तुतः कर्मोंका परित्याग करना सर्वथा असम्भव है।

गीताने यह एक नया दर्शन प्रदान किया कि कर्मोंका आसक्ति-कामनापूर्वक करना भी ठीक नहीं है और उनका छोड़ना भी संभव नहीं। ऐसी परिस्थितिमें कर्मोंका परित्याग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

न करके कर्मोंमें आसक्ति तथा फलका परित्याग कर देना चाहिये। यही फलत्याग लोकहित-साधक हो सकता है। इसलिये गीताने इन दोनों प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गोंको एक साथ मिलाकर एक नया मार्ग निकाल दिया जो लोकहितके लिये अत्यन्त जरूरी था तथा साथ ही व्यावहारिक भी था। इसी युक्तिसे आत्माको सच्ची शान्ति भी मिल सकती है। केवल लोक-कल्याणके लिये निरन्तर कर्म करना तो जरूरी है ही। उसमें आशक्ति तथा फल कामना न रखना ही मनुष्यका परम कर्तव्य है। कर्मका ही नाम जीवन है फिर उन कर्मोंका परित्याग तो कभी संभव भी नहीं है; केवल उनमें फलका त्याग ही किया जा सकता है। इन दोनों मार्गोंका समन्वय करके लोकहित सम्पादन करना ही गीताका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है और यही गीता का दर्शन है। लोकसंग्रहके लिये निरन्तर अनासक्त कर्ममें लीन रहना ही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है।

गीता और साधारण मनुष्य---प्रायः लोगोंकी यह धारणा बनी हुई है कि गीताका ज्ञान बहुत ऊँची कोटिका है, इसलिये साधारण मनुष्य उसपर कदापि चल नहीं सकते। परंतु यह उनका बिलकुल भ्रम है। गीतामें जो उपदेश दिये गये हैं वे सभी मनुष्योंके द्वारा पालन करने योग्य हैं। साधारणसे साधारण मनुष्य भी थोड़ा अभ्यास करनेपर उनपर चल-कर अपना जीवन सुखमय बना सकता है। उदाहरणार्थ—गीताके कर्मयोगको ही लिया जा सकता है। यह बात सभी मनुष्यके लिये जरूरी है कि वे जो भी काम करें उसके फलकी इच्छा न रक्खें; किन्तु कर्तव्यबुद्धिसे या भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही उसे करें। इस प्रकार प्रथम लाभ तो यह होगा कि उस कर्मका फल न मिलनेपर उन्हें दुःख नहीं होगा। दूसरा लाभ यह होगा कि उनका चित्त शुद्ध होकर स्वार्थ-भावनाका बिलकुल परित्याग कर देगा जिससे उनमें परोपकारकी उदात्त भावना जागृत होगी और वे लोकहितको अपना कर्तव्य समझेंगे। इस प्रकार किसी भी कर्मसे उनका चित्त नहीं ऊबेगा। वे कठिनसे कठिन कर्मको भी आसानीसे कर सकेंगे। यह साधना थोड़ेसे अभ्याससे सभी कर सकते हैं। इसका अभ्यास पड़ जानेपर स्वतः ही उनके हृदयमें ज्ञानका अपूर्व प्रकाश फैल जायगा। वे स्वतः ही प्राणिमात्र से प्रेम करने लगेंगे तथा ईश्वरमें श्रद्धालु बन जायेंगे। इसलिये गीताके ज्ञानका साधारणसे साधारण मनुष्य भी अभ्यास कर सकता है तथा अपने जीवनमें इसे कार्यरूपमें परिणत करके जीवनके वास्तविक लक्ष्यको पाकर संसारकी भलाईमें सहायक हो सकता है। ऐसे मनुष्यके आत्म-कल्याण सिद्ध करनेमें तो सन्देह ही क्या है।

असम्भव इस दुनियामें कोई भी कार्य नहीं है। मनुष्य सभी कठिन-से-कठिन कार्यों के करनेमें भी सफल हो सकता है। उसका सबसे बड़ा सहायक है--अभ्यास। अभ्यास ही सफलताका सर्वोत्तम साधन है। गीताके सिद्धान्त भी इसी अभ्यासके बलसे जीवनमें उतारे जा सकते हैं। विशेषतया विद्याध्ययन के समय ही बालकोंको इनपर मनन करना चाहिये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा अपने जीवनमें इनको चरितार्थ करनेका अभ्यास डालना चाहिये। जो कुछ मिल गया उसीसे संतुष्ट रहकर निष्काम भावसे कर्म करनेपर प्रत्येक मनुष्य गीताके सिद्धान्तोंको जीवनमें सरलतासे ही उतार सकता है। इसलिये यह समझना सर्वथा भूल है कि गीताके सिद्धान्त सर्वसाधारणके द्वारा पालन करने योग्य नहीं हैं।

गीताके सदा याद रखने लायक कुछ सिद्धान्त--

(१) केवल कर्तव्य समझकर प्रत्येक कर्म करो। कभी फलकी इच्छा न करो।

(२) प्राणिमात्रको अपने ही समान समझो।

(३) प्रत्येक कर्मको भगवान्के अर्पण कर दो और उसीकी सेवा समझकर प्रत्येक कर्म करो।

(४) सुख तथा दुःखको समान समझो।

(५) जिस किसी कर्मको करो उसे श्रद्धा तथा दृढ़ चित्तसे करो।

(६) अपने मन तथा इन्द्रियोंको वशमें रक्खो।

(७) कर्म करते हुए भी कमलपत्रकी भाँति उनमें लिप्त मत हो। केवल भगवान्की आज्ञा समझकर उनकी सेवाके लिये ही कर्म करो।

(८) शत्रु, मित्र, उदासीन, साधु और पापी--इन सबको आत्माकी दृष्टिसे समान देखना चाहिये।

(९) सांसारिक भोगोंमें कभी भी समझदार मनुष्य आसक्त नहीं होते।

(१०) सबमें समता रखनेवाला मनुष्य इस संसारमें रहता हुआ भी मुक्त ही है।

(११) वही वास्तवमें ज्ञानी है जो प्रिय समाचारसे हर्षित नहीं होता और अप्रिय समाचारसे दुखित नहीं होता।

(१२) प्राणि मात्रमें भगवान्के दर्शन करो। सभी प्राणियोंको भगवान्का ही रूप समझो। कभी किसीकी बुराईका विचार अपने मनमें मत आने दो।

(१३) शुभ कार्य करनेवाला मनुष्य कभी भी दुःख नहीं पाता। वह सदा सुखी ही रहता है। अच्छे कर्मोंका फल अच्छा और बुरे कर्मोंका फल बुरा ही मिलता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(१४) हमेशा भगवान्‌का स्मरण किया करो। अगर बुरा आदमी भी अनन्य मनसे भगवान्‌का भजन करता है तो वह अवश्य अच्छी गतिको प्राप्त करता है।

(१५) अपने मनमें कभी अभिमान मत धारण करो। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और ईर्ष्या—ये मनुष्यके छः शत्रु हैं, अतः इनको नष्ट करना ही मनुष्यका कर्तव्य है।

(१६) मान और अपमानको समान समझो। निन्दा तथा प्रशंसाका भाव अपने मनसे बिलकुल निकाल दो।

(१७) कभी किसी प्राणीसे वैर मत करो, सदा सत्य बोलो, त्याग-वृत्तिको अपनाओ, कभी किसीकी चुगली मत करो।

(१८) अपना धर्म चाहे दूसरेके धर्मसे हलका भी हो परन्तु उसे कभी भी नहीं छोड़ना चाहिये। स्वधर्ममें मरना भी श्रेष्ठ है। मनुष्य स्वधर्मका पालन या अपना कर्म करनेपर ही सफलता पा सकता है।

(१९) कर्मोंका परित्याग कभी भी मनुष्य कर नहीं सकता है, अतः कर्म छोड़नेका विचार मनुष्यको कभी सपनेमें भी नहीं करना चाहिये। कर्मके फलकी इच्छाका त्याग ही वास्तविक त्याग है। कर्मका त्याग तो सर्वथा असम्भव है।

(२०) काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरकके दरवाजे हैं; इसलिए इनका तो कभी भी सेवन नहीं करना चाहिये।

(२१) भगवान्‌पर विश्वास करके उनके अनन्य शरण हो जाओ। भगवान्‌की शरणागतिसे सारे पाप नाश होकर परम सफलता मिल जाती है।

गीताके १८ अध्यायोंका सार—

अब गीताके सभी अध्यायोंका संक्षेपमें परिचय दिया जाता है जिससे उससे पूरा परिचय हो सके। गीताके एक-एक अध्यायमें एक-एक नये-नये विषयका विवरण दिया गया है। वैसे तो सारी गीताका ही उद्देश्य मनुष्यके मोहको दूर करना ही है। गीताका अर्जुन मनुष्यमात्रका प्रतिनिधि ह। कर्तव्य या धर्मके विषयमें मोह होना बुरा ही है। मोहवश मनुष्य अधर्मको ही धर्म समझ बैठता है, इसलिये मोह बहुत बुरी चीज है। मनुष्यके इसी मोहको दूर करनेके लिये गीताकी रचना हुई है। तभी अन्तमें अर्जुनने कहा है कि मेरा मोह बिलकुल दूर हो गया है। मुझे धर्मका स्मरण हो गया है। मनुष्य मोहके कारण अपना कर्तव्य छोड़ बैठता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पहला अध्याय----

महाभारतके युद्धके समय कौरवों और पाण्डवोंकी दोनों सेनाएँ आमने-सामने युद्धके लिये खड़ी हैं। श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथि हैं। वह अपने रथको दोनों सेनाओंके बीचमें ले जाकर खड़ा कर देते हैं। अर्जुन चारों तरफ अपने सम्बन्धियोंको युद्धके लिये तैयार देखकर मोहमें फँस जाता है। वह अपने कर्तव्य-कर्मको भूल बैठता है। वह झट श्रीकृष्णसे कह देता है कि मैं विश्वके राज्यके लिये भी इनको नहीं मार सकता। ये चाहे मुझे मार डाले परन्तु मैं कभी इनको नहीं मार सकता। श्रीकृष्ण उसे मोहमें फँसा हुआ देखकर कर्तव्यका ज्ञान करवाते हैं और वास्तविक स्थिति समझाते हैं। पहला अध्याय गीताकी भूमिकामात्र है।

दूसरा अध्याय----

इस अध्यायमें श्रीकृष्ण भगवान् यह समझाते हैं कि इस शरीरके अतिरिक्त एक दूसरी चीज भी है जो कभी न मरती है, न जन्म लेती है। इसका नाम है आत्मा। उसे न आग जला सकती है, न वायु सुखा सकता है, न जल गीला कर सकता है। उसे कोई काट भी नहीं सकता है। अर्जुन शरीरको ही आत्मा समझकर मोहमें फँसा हुआ था। उसे यह पता ही नहीं था कि एक ऐसी भी शरीरके अंदर चीज है जिसका कभी नाश हो ही नहीं सकता है। केवल शरीरका ही नाश होता है। जैसे शरीरमें रहनेवाली आत्मा शरीरमें बालकपन, जवानी और बुढ़ापेका अनुभव करती है, वैसे ही वह दूसरे शरीरमें चली जाती है। शरीरका छोड़ना उसके लिये वैसे ही है जैसे हम पुराना कपड़ा छोड़कर नया कपड़ा पहिन लेते हैं।

उस आत्माको कभी कोई सुख-दुःख, सर्दी-गरमी नहीं सताते हैं। ये तो इन्द्रियोंके साथ विषयोंका मेल होनेपर प्रतीत होते हैं। ये सदा कायम नहीं रहते हैं। इनको सहन करना ही उचित है। धीर मनुष्य को ये कभी विचलित नहीं करते हैं। आत्मा अविनाशी है। उसे कोई लाख चेष्टा करनेपर भी मार नहीं सकता है। केवल शरीरका नाश होता है। जब आत्मा नित्य है तो फिर उसके लिये कभी व्याकुल होना ठीक नहीं है।

यदि कोई इसे मरनेवाला ही समझे तो भी इसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। नाशवान् चीज तो नष्ट होकर रहेगी। उसे कोई प्रयत्न करके भी बचा नहीं सकता है। अवश्य होनेवाली बातका शोक करना भी मूर्खता है। इन प्राणियोंका केवल कुछ समयके लिये दर्शन होता है। जन्म लेनेसे पहले और मरनेके बाद ये कभी भी दिखायी नहीं पड़ते हैं। इसलिये इनके लिये शोक करना मूर्खता है।

अज्ञानमें फँसकर मनुष्यको कभी अपना कर्तव्य नहीं छोड़ना चाहिये। अपना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्तव्य छोड़ देनेपर संसार उसकी निन्दा करता है। इज्जतदार आदमीकी निन्दा होना मरन से भी बुरा है।

सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, जय-पराजय—इनको समान समझकर मनुष्यको अपना कर्म करना चाहिये। कर्ममें हमेशा मनुष्यको दृढ़ विचार रखना चाहिये। फलकी इच्छासे कोई काम नहीं करना चाहिये। किसी कामनासे किये हुए कर्म केवल सुख-भोगकी इच्छासे किये जाते हैं। इसलिये उनका फल न मिलनेपर दुःख होना स्वाभाविक है। निष्कामभावसे कर्म करना ही मनुष्यको आनन्दित रखता है। ज्ञानी आदमी बाहरी कर्मकाण्डके चक्करमें नहीं फँसता है। कर्म करने का ही मनुष्यका अधिकार है। फलमें उसका अधिकार नहीं। फल देना दूसरेके हाथ है। इसलिये कभी भी फलकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। न कर्म छोड़ना ही चाहिये। कर्तव्य समझकर कर्म करते रहना चाहिये। कर्ममें आसक्त नहीं होना चाहिये। निष्कामभावसे कर्म करना और फलमें सम-बुद्धि रहना ही वास्तविक कर्मयोग है। कर्मके फलकी इच्छा न रखनेवाला मनुष्य कभी पापोंमें नहीं फँसता है।

तमाम कामनाओंका परित्याग करनेपर ही मनुष्यकी बुद्धि स्थिर होता है। वह स्वयमेव संतुष्ट रहता है। स्थिर बुद्धिवाला मनुष्य दुःखोंसे घबराता नहीं है। सुखकी कभी वह इच्छा नहीं करता है। वह राग, द्वेष, भय और क्रोधसे बिल्कुल दूर रहता है। वह अपनी इन्द्रिओंको विषयोंको तरफ जाने ही नहीं देता है। इन्द्रियोंको वशमें करके ईश्वरका ध्यान करना चाहिये। विषयोंका ध्यान करनेसे ही उनमें आसक्ति होती है। राग-द्वेषरहित होकर जो मनुष्य निष्कामभावसे कर्म करता है उसकी अन्तरात्मा हमेशा संतुष्ट रहती है। प्रसन्न रहनेवाले मनुष्यको कभी कोई दुःख नहीं सताता है। प्रसन्न चित्तवाले मनुष्यकी बुद्धि तुरन्त स्थिर हो जाती है। इन्द्रियोंका वशमें रखना मनुष्यके लिये नितान्त जरूरी है। कामनाओंमें फँसे रहनेवाले मनुष्यको कभी भी शान्ति नहीं मिलती है। निष्कामभावसे काम करनेवाले मनुष्यके मनको कभी कामनाएँ विकृत नहीं करती हैं। कामना न करनेवाला मनुष्य ममता और अभिमानसे रहित होकर शान्ति प्राप्त करता है।

तीसरा अध्याय—

कर्मोंका परित्याग कभी भी सम्भव नहीं है। कोई भी मनुष्य क्षणभर भी काम किए बिना रहता नहीं है। प्रकृतिके गुण मनुष्यको हर एक क्षण कर्म करनेके लिए बाध्य करते रहते हैं। केवल कर्म न करनेसे मनुष्य कर्मोंके बन्धनसे छूट नहीं सकता है। वह मनुष्य पाखण्डी है जो मनमें तो कामोंको स्मरण करता रहता है और कर्म करनेवाली इन्द्रियोंको बाहरसे रोक लेता है। वास्तवमें वही मनुष्य सच्चा है जो कर्मेन्द्रियोंसे काम तो करता रहता है, परंतु अपनेको उन कामोंमें आसक्त नहीं होने देता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर्तव्य-कर्म तो करना ही पड़ता है। शरीर भी तो बिना कर्मोंके नहीं रह सकता। सांसारिक कर्म तो मनुष्यको करते रहना ही चाहिए। मनुष्यको कर्म करना ही पड़ता है, किन्तु उसमें आसक्त नहीं होना चाहिये। कर्मका परित्याग ज्ञानीको भी नहीं करना चाहिए। कर्मसे ही जनक आदि, जो ज्ञानी थे, सिद्धिको प्राप्त हुए थे। श्रेष्ठ मनुष्यको कभी लोक मर्यादाओं-को नहीं छोड़ना चाहिये। छोटे आदमी बड़े आदमियोंका ही अनुसरण किया करते हैं। इसलिए बड़े आदमी को कभी भी लोक-मर्यादा नहीं छोड़ना चाहिए। मनुष्यको अपने धर्मका परित्याग कभी नहीं करना चाहिए। दूसरेका धर्म चाहे जितना सुन्दर हो परन्तु उसे ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिए। मनुष्यका अपना कर्तव्य ही श्रेष्ठ है।

काम और क्रोध मनुष्यको पापके लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए ये दोनों मनुष्यके शत्रु हैं। सारा संसार इनसे युक्त है। इच्छा हरएक मनुष्यके हृदयको दूषित करती है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि——इसके आधार हैं। इसलिए इनका वशमें रखना ही उत्तम है। लोकसंग्रहके लिए भी उत्तम कर्म करने चाहिये।

चौथा अध्याय——

निर्गुण परमात्मा भी सगुण हो जाता है तो वह भी पुनः-पुनः प्रकट होता है। जब-जब बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं तभी उनको दूर करनेके लिए भगवान् अवतार लेते हैं। चारों वर्णोंको भगवान्ने ही समाज के संचालन के लिए गुण और कर्मोंके अनुसार बनाया है। ईश्वरको भी सगुणरूपमें आनेपर कर्म करना ही पड़ते हैं। मुक्त पुरुष भी निष्काम कर्म तो करते ही रहते हैं। इसलिए कर्मोंका परित्याग करनेका तो कभी विचार करना ही नहीं चाहिए। पण्डित वही है जो सभी काम कामनाको छोड़कर करता है। सफलता-असफलता, मान-अपमान, सुख-दुःखकी भावना त्यागकर कर्म करनेवाला मनुष्य कभी कर्मके बन्धनमें नहीं फँसता है। मनुष्य जो कर्म करे उसे ही ईश्वरके अर्पण कर देना चाहिये।

यज्ञ कई प्रकारके हैं——द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ और ज्ञानयज्ञ। द्रव्ययज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ ही उत्तम है। उस ज्ञानकी प्राप्ति होती है गुरुसेवासे। तत्त्ववेत्ता पुरुष उस ज्ञानकी शिक्षा देते हैं जिसे जानकर मनुष्य कभी मोहमें नहीं फँसता है। जैसे अग्नि काठके ढेरको जला देती है वैसे ही ज्ञानकी अग्नि सारे कर्मोंको जला डालती है। ज्ञान मिल सकता है केवल श्रद्धालु और संयमीको। अश्रद्धालु और संशयवाला मनुष्य हमेशा दुःख भोगता है।

पाँचवाँ अध्याय——

कर्मोंके छोड़नेकी अपेक्षा कर्मोंका फल छोड़ना उत्तम है। वह मनुष्य सदा संन्यासी ही है जो कि किसीसे न कभी घृणा करता है, न द्वेष करता है, न कभी किसीसे कुछ इच्छा करता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। संन्यास और कर्मयोग एक ही चीज है। निष्काम-भावसे कर्म करता हुआ प्राणी-मात्रको अपने ही समान समझनेवाला मनुष्य कभी कर्मोंमें लिप्त नहीं होता है। सब कर्मोंको ईश्वरके अर्पण कर जो मनुष्य कर्म करता है वह कभी पापका भागी नहीं होता है।

बुद्धिमान् मनुष्य सभी प्राणियोंको समानभावसे देखते हैं। वे किसीको नीची नजरसे नहीं देखते हैं। जिनमें यह समताका भाव आ जाता है वे एक तरहसे मुक्त ही हैं ज्ञानी को कभी रंज और खुशी नहीं होती है। सुख और दुःखके भाव तो केवल आसक्तिसे उत्पन्न होते हैं। दुनियाँके कर्मोंमें आसक्त न होनेवालेको कभी इनसे परेशानी होती ही नहीं है। काम और क्रोधके वेगको जीतनेवाला मनुष्य हमेशा सुखी ही रहता है।

छठा अध्याय—

कर्मयोग ध्यानयोगकी ही सीढ़ी है। फलकी इच्छा न रखनेवाला मनुष्य धीरे-धीरे योगी बन जाता है। योगसाधनसे शान्ति प्राप्त होना तो स्वाभाविक ही है। मनुष्यको अपनी आत्माका उद्धार अपने-ही-आप करना चाहियेह। खुद ही खुदका शत्रु है और खुद ही खुदका मित्र है। जो मनुष्य आत्माका जीत लेते हैं उनकी आत्मा उनकी हमेशा भलाई ही करती है। अपने ऊपर काबू कर लेनेपर मनुष्यको कभी मान-अपमान आदिके भाव नहीं सताते हैं। समबुद्धि होकर योगका साधन करना चाहिये। योगका अभ्यास करनेवालेको एकान्त जीवन विताना चाहिये। उसे किसी भी भोगकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। अपने चित्तको वशमें करनेपर ही मनुष्य योग में सफलता पा सकता है। योगाभ्यासीको कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। उसे ब्रह्मचारी रहना और डरना नहीं चाहिये। भोजन उतना ही करना चाहिये जितना जिसके लिये उचित हो। इसी प्रकार सोना-जागना भी अधिक नहीं होकर युक्त ही होना चाहिये। इस तरह अभ्यास करनेपर जब मनुष्यका चित्त स्थिर हो जाता है तो स्वतः ही सब कामनाओंसे उसकी निवृत्ति हो जाती है। योगी सबको समान दृष्टिसे देखता है यद्यपि मन चञ्चल है परन्तु अभ्यासके द्वारा उसे भी रोकना कठिन नहीं है। उसे रोकने के लिये वैराग्य और अभ्यास—ये दो साधन हैं। योगमें भ्रष्ट होनेपर भी मनुष्यकी दुर्गति नहीं होती है। वह दूसरे जन्ममें या तो योगियोंके ही कुलमें पैदा होता है अथवा श्रीमानों-के कुलमें पैदा होता है। योगियोंमें सबसे उत्तम योगी वह है जो श्रद्धावान् होकर तथा अन्तरात्मा को भगवान्से जोड़कर भगवान्की सेवा करता है। अतः मनुष्यको ऐसा ही योगी बनना चाहिये।

सातवाँ अध्याय—

ईश्वरकी दो तरहकी प्रकृति है—एक परा और दूसरी अपरा। ये दोनों बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—यह अपरा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकृति है। परा प्रकृति है—जीव। सारे प्राणी इन्हीं दो प्रकृतियोंसे पैदा हुए हैं। जैसे मालामें मोती पिराये हुए हैं, वैसे ही उस परमात्मामें सारा जगत् पिरोया हुआ है। सबमें उसीकी स्थिति है। जलमें रस, सूर्य और चन्द्रमामें चमक, वेदोंमें ओंकार और पुरुषमें बल वही है। वही सारे प्राणियोंका बीज है। सभी भाव उसीसे पैदा होते हैं। सत्त्व, रज और तम—–इन तीन गुणोंसे सारा संसार व्याप्त है और इनके कारण मोहित होकर वह परम अविनाशी ईश्वरको नहीं जानता है। ईश्वरकी गुणमयी माया बड़ी दुस्तर है। उस ईश्वरकी शरणमें जानेपर ही मनुष्य इस मायाको पार कर सकता है।

चार तरह के भक्त होते हैं, किसी दुःखको दूर करनेकी इच्छासे कुछ मनुष्य तो ईश्वरको भजते हैं। कुछ मनुष्य उसे जानने की इच्छासे भजते हैं, कुछ मनुष्य धन पानेकी इच्छासे भी उसका भजन करते हैं। कुछ मनुष्य बिना किसी कामनाके ज्ञानपूर्वक भगवान्का भजन करते हैं। ये सभी वैसे तो ठीक हैं; परंतु बिना किसी कामनाके भजनेवाला ज्ञानी भक्त तो साक्षात् भगवान्का ही रूप बन जाता है। किसी कामनाके कारण विभिन्न देवताओं-की भक्ति करनेवालोंकी भी श्रद्धाको ईश्वर उन-उन देवताओंमें दृढ़ कर देता है। उन-उन कामनाओंको वे उन-उन देवताओंसे पूरी कर लेते हैं, परन्तु उनको जो फल मिलता है, स्थायी नहीं होता है। निष्कामभावसे भगवान्की भक्ति करनेवाले मनुष्य सुख-दुःख आदिको पार करके परमात्मामें लीन हो जाते हैं।

आठवाँ अध्याय––

इस अध्यायमें आरम्भमें ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञको समझाया है। अविनाशी परमात्मा ही ब्रह्म है। वही परमात्मा जीवके रूपमें जब रहता है तब अध्यात्म कहलाता है। प्राणियोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले यज्ञ आदि कार्य कर्म हैं। शरीर अधिभूत है। आत्माको अधिदैव कहा जाता है। ईश्वर ही अधियज्ञ है। अन्त अर्थात् मृत्युके समय भगवान्का स्मरण करता हुआ जो मनुष्य प्राण छोड़ता है वह निश्चय ही भगवान्के पास ही पहुँचता है। अन्तकालमें मनुष्यको जैसी भावना होती है वह उसीको पाता है। इसलिये हमेशा भगवान्का ही स्मरण होना चाहिये। भगवान्की शरणमें जानेपर मनुष्य जन्म और मरणके दुःखसे छूट जाता है। सभी लोकोंसे मनुष्यको अपना पुण्य भोगनेके बाद मनुष्यलोकमें आना पड़ता है। केवल भगवानका शरणमें पहुँचे हुए मनुष्यकी कभी यहाँ नहीं आना पड़ता है। ईश्वरकी प्राप्ति भक्तिके बिना कभी सम्भव नहीं।

इस लोकमें दो तरहकी गति मनुष्योंकी बतलायी गयी हैं। साधारण कर्ममें आसक्त मनुष्य दक्षिणायन-मार्गसे विनाशी स्वर्ग आदि लोकोंमें जाते हैं। ज्ञानी मनुष्य उत्तरायण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भागसे ब्रह्मलोकमें पहुँचते हैं और वहाँसे फिर कभी भी नहीं लौटते हैं। उपनिषदोंमें इन्हीं मार्गों को प्रवृत्ति और निवृत्तिका मार्ग या पितृयान और देवयान नामसे पुकारा गया है। दक्षिणायन काला और उत्तरायण सफेद मार्ग माने गये हैं। सफेद मार्गपर जानेवाले वापिस लौटकर इस जगतमें फिर नहीं आते हैं और काले मार्गसे जानेवाले बार-बार इस जगत्में चक्कर लगाते रहते हैं।

नवाँ अध्याय--

इस अध्यायमें अत्यन्त गुप्त ज्ञानका वर्णन है। वह ज्ञान है ब्रह्मका ज्ञान। इस ज्ञानको पा लेनेपर मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह ब्रह्मज्ञान सब ज्ञानोंका राजा बतलाया गया है। यह संसार ब्रह्मसे ही व्याप्त है। सभी प्राणी उसीमें स्थित हैं। जैसे सब जगह घूमता हुआ वायु आकाशमें रहता है वैसे सारे प्राणी परमात्मामें रहते हैं। प्रलयके समय सभी प्राणी परमात्माकी प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं और कल्प के समय फिर भगवान् उनको भिन्न-भिन्न रूपोंमें पैदा कर देता है। यह सब होते हुए भी वह कर्मों के बन्धनमें बँधा हुआ नहीं है। वही प्रकृतिको प्रेरित करके बार-बार जगतकी रचना करवाता है। अज्ञानी ईश्वरके महत्त्वको न जानकर उसका अनादर करते हैं; परंतु ज्ञानी मनुष्य सबसे चित्त हटाकर उसकी उपासना करते हैं कुछ लोग जीव और ब्रह्म में अभेद मानकर उपासना करते हैं और कुछ अपनेको दास और परमात्माको स्वामी समझ उसकी उपासना करते हैं। इस जगत्में जो भी कुछ दिखाई पड़ता है वह सब उसीका रूप है। यज्ञ आदि कर्मोंका फल है स्वर्ग प्राप्त करना, परन्तु स्वर्गका सुख भोगनेके पश्चात् फिर जीवको मनुष्यलोकमें आना पड़ता है। इस प्रकार वेदोंके द्वारा बतलाये हुए कर्मोंको करनेवाले इस संसारमें बार-बार आते रहते हैं। उनको सुख-दुःखके चक्रमें फँसा ही रहना पड़ता है। भगवान्की अनन्यभावसे उपासना करनेवाले कभी जन्म और मरणके बन्धनमें नहीं पड़ते हैं। परमात्मा सबको समान दृष्टिसे देखता है। भक्त तो स्वयं परमात्माके ही रूप हैं। बुरा आदमी भी यदि भक्ति करता है तो वह भी शीघ्र सज्जन बनकर भगवान्को शाश्वती शान्तिको प्राप्त करता है।

दसवाँ अध्याय--

इसमें भगवान्की विभूतियोंका वर्णन है। भगवान्के प्रभावको देवता और मुनि कोई भी नहीं जानते हैं। वही सबका कारण है। उसके सच्चे स्वरूपको जान लेनेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है। ज्ञानी लोग हमेशा भगवान्के ही गुण गाते हैं। दूसरोंसे भी वे भगवान् की ही विभूतियोंको बतलाते हैं।

सब प्राणियों के हृदयमें आत्मारूपमें परमात्मा ही निवास करता है। वही सारे प्राणियोका आदि, बीच और अन्त है। बारह आदित्योंमें विष्णु वही है। प्रकाशवाले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पदार्थोंमें वह सूर्य है। वायुओंमें वह मरीचि है। तारोंमें वह चन्द्रमा है। वेदोंमें वह सामवेद है। देवों में इन्द्र है। इन्द्रियोंमें वह मन है। प्राणियोंमें वह चेतना है। इस प्रकार सभी वस्तुओंमें सार वस्तु वही है। सारे जगत्को उसीने धारणकर रक्खा है।

ग्यारहवाँ अध्याय—

इसमें भगवान्के विराट् रूपका वर्णन है। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा बतलाए हुए अत्यन्त गुप्त अध्यात्म ज्ञानको सुनकर अर्जुनकामोह भाग गया। अब उसे भगवान्के विराट् रूपको देखनेकी इच्छा हुई। उसने इनसे अपना वह विराट् रूप दिखानेकी प्रार्थना की। भगवान्को भी भक्तकी प्रार्थना माननी पड़ी; परन्तु भगवान्के विराट् रूपको देखनेके लिए साधारण नेत्र कभी समर्थ नहीं हो सकते। उसको देखनेके लिये दिव्यदृष्टि चाहिये। भगवान्ने उसे दिव्यदृष्टि दे दी। सारा यह चराचर संसार भगवान्का ही तो रूप है। इसके दर्शन इन आँखोंसे होना अत्यन्त कठिन है। वैसी भावना लानेके लिये मनुष्यको अपनी दृष्टिको दिव्य अर्थात् विशाल करना पड़ता है। तभी वह इस विराट् रूपको देखनेका अधिकारी होता है। वास्तवमें सच्चा भक्त सारे संसारको भगवानका ही रूप समझता है।

अर्जुन भगवान्के उस विराट् रूपको देखकर चकित हो गया। वह रूप बड़ा भयंकर था। उसे देखकर चकित होना स्वाभाविक ही था। उस रूपमें सारा विश्व उसे दिखायी पड़ा। सारे महाभारतके युद्धका दृश्य भी उसे साफ-साफ दिखायी पड़ा। सारे योद्धा भरे हुए उसे दिखायी दिये। उस दृश्यको देखकर अर्जुनने फिर वही सौम्यरूप दिखानेकी प्रार्थना की। उसने अपने अपराधों के लिये क्षमा-याचना की। भगवान्ने फिर सौम्यरूप धारण कर अर्जुनको भगवान्का अनन्य भक्त होनेका उपदेश दिया।

बारहवाँ अध्याय—

इस अध्यायमें भक्तियोगका प्रतिपादन है। जो दिन-रात मन लगाकर भगवान्का भजन करते हैं वे योगियोंमें श्रेष्ठ हैं। जो सब प्राणियोंको समान समझकर और इन्द्रियोंको वशमें कर भगवान्की उपासनामें मन लगाते हैं वे प्राणिमात्रका हित करते हुए भगवानको पा लेते हैं। मनुष्य जो भी कर्म करे वही परमात्माके अर्पण कर दे। यदि यह भी वह न कर सके तो सारे कर्मोंके फलको त्याग दे। कर्मोंके फलका त्याग सबसे अच्छा है। इससे मनुष्यको परमशान्ति मिलती है।

भक्तकी पहिचान यह है कि वह किसी भी प्राणीसे द्वेष नहीं करता है। वह सबसे मित्रता रखता है। प्राणिमात्रपर वह दया करता रहता है। न वह कहीं ममता करता है और न कभी अहंकार करता है। वह सुख और दुःखमें समान रहता है। हमेशा वह क्षमा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रखता है। उसे जो कुछ मिल जाता है उसीसे सन्तुष्ट रहता है। उससे कोई नहीं डरता है, न वह किसीसे उद्विग्न होता है। हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेगसे वह बिलकुल दूर रहता है। वह शत्रु और मित्रको समान दृष्टिसे देखता है। मानसे वह राजी नहीं होता है और अपमानसे दुःखित नहीं होता है। वह निन्दा-स्तुतिको एक-सा समझता है। जिस किसी भी कामको वह करता है उसको दृढ़ निश्चयसे करता है।

तेरहवां अध्याय--

इस अध्यायमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका वर्णन है। शरीरका नाम है क्षेत्र। उसमें पाप और पुण्यकी खेती होती है। इसलिये उसे क्षेत्र कहा गया है। क्षेत्रज्ञ है जीव। वह जीव परमात्माका ही अंश है। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, ११ इन्द्रियाँ और उनके विषय --इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, शरीर, चेतना और धैर्य--ये सब क्षेत्र और उसके विकार हैं।

मानकी इच्छा न करना, अपनी बड़ाई न करना, किसी प्राणीको न सताना और अभिमान न करना आदि ज्ञान हैं और इनके विपरीत जो काम हैं वे हैं अज्ञान। परमात्मा सर्वव्यापक है। वह सब इन्द्रियोंके व्यापारमें दिखायी पड़ता है, परन्तु उसके कोई इन्द्रिय नहीं है। वह असंग है, फिर भी सारे ब्रह्माण्डको धारण करता है। वह निर्गुण होते हुए भी गुणोंको भोगता हुआ प्रतीत होता है। वह सबमें एक है। प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। विकार और गुण प्रकृतिसे ही पैदा होते हैं। प्रकृति कारण है और पुरुष सुख-दुखको भोगनेवाला है।

जैसे आकाश सर्वव्यापक होते हुए भी सूक्ष्मताके कारण कहीं लिप्त नहीं होता, वैसे ही सारे शरीरमें रहकर भी आत्मा दोषोंसे लिप्त नहीं होता है। जैसे सूर्य सारे संसारको प्रकाशित करता है वैसे ही यह आत्मा सारे शरीरमें प्रकाश करता है।

चौदहवां अध्याय--

इस अध्यायमें प्रकृति और गुणोंका वर्णन है। प्रकृति परमेश्वरकी शक्ति है। वह उसीमें बीज डालता है। उसीसे सारे प्राणी पैदा होते हैं। शरीरमात्र उसीका कार्य है। वही विश्वकी माता है और परमेश्वर पिता। सत्त्व, रज और तम--ये तीन गुण हैं। ये प्रकृतिसे पैदा होकर जीवको मायामें फँसाये रखते हैं। सत्त्वका काम है प्रकाश करना, इसलिये यह मनुष्यको सुखमें लगाता है। रजोगुण तृष्णा पैदा करता है। तमोगुण सबको मोहमें फँसाता है। सत्त्व सुखके लिये प्रेरित करता है। रज कर्ममें लगाता है। तम मनुष्यको प्रमादमें लगाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ज्ञानके प्रकाशके समय सत्त्वगुणकी वृद्धिका अनुमान होता है। रजोगुणकी वृद्धिसे लोभ, अशान्ति, तृष्णा और काम करनेकी इच्छा—ये पैदा होते हैं। तमोगुणके बढ़नेपर काम न करनेकी इच्छा, प्रमाद, मोह और अज्ञान आदि होते हैं। जब सत्त्वगुण बढ़ता है, तब मृत्यु होनेपर मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है। रजोगुणकी प्रबलताके समय मृत्यु होनेपर जीव मर्त्यलोकमें ही रहता है। तमोगुणकी वृद्धिके समय मरा हुआ जीव पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़ता है।

वह स्वरूपसे गुणातीत है। जो इन तीनों गुणोंमें नहीं फँसता है, वह सुख-दुखको समान समझता है। मान-अपमान उसके लिए समान हैं। वह सोने और मिट्टीको समान समझता है। वह सबको समान समझता है। इन गुणोंसे पार होकर जो मनुष्य भगवान्‌की भक्ति करता है वह ब्रह्मरूप हो जाता है। वह परम शान्तिको पा लेता है।

पन्द्रहवाँ अध्याय——

इस अध्यायमें संसारको वृक्ष बतलाया है। यह वृक्ष बड़ा विचित्र है इसकी जड़ ऊपरकी तरफ है। इसकी डालियाँ नीचेकी ओर हैं। यह वृक्ष अश्वत्थ कहलाता है। यह अश्वत्थ इसलिये है कि यह कल भी रहेगा या नहीं यह कोई नहीं ज़ानता है। यह अविनाशी है। यह अविनाशी इसलिये है कि इसमें जन्मका ताँता कभी नहीं टूटता है। आवागमनका चक्र सदा चलता ही रहता है। वेद इसके पत्ते हैं। वेद पत्ते इसलिये हैं कि उनसे संसारकी रक्षा होती है। इस संसार-वृक्षके तत्त्वको जाननेवाला ही वास्तवमें जाननेवाला है। तीनों गुणोंसे पैदा हुए अहंकार आदि उसकी शाखाएँ चारो तरफ फैली हुई हैं। विषय इसकी कोंपलें हैं। कर्मोंके अनुसार उसकी जड़े मनुष्यलोकमें फैली हुई हैं।

इस संसाररूपी वृक्षका सच्चा रूप कोई नहीं पहिचानता है। इसके आदि और अन्तका भी किसीको पता नहीं है। इस मजबूत जड़वाले वृक्षकी जड़ोंको वैराग्यसे काटकर इसके कारण ईश्वरकी खोज करनी चाहिये। उस ईश्वरके धाममें वे पहुँचते हैं जो कामनाओंका परित्याग कर सबमें समत्वका भाव रखते हैं। उस परमधाममें पहुँचनेपर मनुष्यको कभी लौटना नहीं पड़ता है। जीव भी उसी ईश्वरका अंश है। इस लोकमें तीन चीजें हैं—क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम। प्रकृति क्षर है। जीव अक्षर है। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण परमात्मा है। यह अत्यन्त गूढ़ ज्ञान है।

सोलहवाँ अध्याय——

इसमें दैवी सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्तिका वर्णन है। निडरता, चित्तकी शुद्धता,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दान, इन्द्रियोंको वशमें रखना, यज्ञ, वेद पढ़ना, तप, सीधापन, अहिंसा, सत्य बोलना, क्रोध न करना, त्याग, शान्ति, प्राणियोंपर दया आदि श्रेष्ठ गुण दैवी सम्पत्ति हैं।

पाखण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता, अज्ञान—ये आसुरी सम्पत्ति हैं। दैवी सम्पत्ति मुक्तिका कारण और आसुरी सम्पत्ति बन्धन करनेवाली है। इस संसारमें दो स्वभावोंके आदमी हैं—कुछ देव-स्वभावके और कुछ असुर-स्वभाववाले। उत्तम स्वभाववाले मनुष्य हैं देवता और बुरे स्वभाववाले मनुष्य हैं असुर। आसुरी प्रकृतिका मनुष्य संसारको मिथ्या मानता है, ईश्वरको भी वह नहीं मानता है। यह संसार स्त्री और पुरुषके संयोगसे पैदा हो जाता है—उसका यह कहना है। आसुरी प्रकृतिके लोग हमेशा बुरी-बुरी असम्भव कामनाएँ किया करते हैं। वे हमेशा चिन्तित रहते हैं। वे सदा आशारूपी पाशमें बंधे रहते हैं। वे अन्यायसे धन कमाना चाहते हैं। वे हमेशा मोहमें फँसे रहते हैं। काम और भोगों-में फँसे रहनेके कारण वे नरकमें पड़ते हैं।

काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरकके दरवाजे हैं। इन तीनोंको दूरसे ही छोड़ देना चाहिये। इन तीनोंको छोड़कर साधन करनेपर मनुष्य परम सुखको पा लेता है।

सतरहवाँ अध्याय—

इस अध्यायमें श्रद्धा, भोजन, यज्ञ, तप और दान—इन सभीके सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तीन भेद किये हैं। सात्त्विक श्रद्धावाले देवोंकी, राजसिक श्रद्धावाले यक्षोंकी और तामसिक श्रद्धावाले भूतप्रेतादिकी उपासना करते हैं। सात्त्विक प्रकृतिवालोंके भोजन, यज्ञ, दान और तप आदि दूसरे ही प्रकारके होते हैं। राजसिक तथा तामसिक स्वभाववालोंके ये और ही प्रकारके होते हैं। आयु बढ़ानेवाला, बलदायक और आरोग्यवर्धक रसदार और स्निग्ध भोजन सात्त्विक मनुष्यको अच्छा लगता है। अत्यन्त मिर्च और खटाईवाला भोजन राजसिक स्वभाववालोंको अच्छा लगता है। सड़ा, बासी, उच्छिष्ट, अपवित्र भोजन तामसिक स्वभाववालोंको अच्छा लगता है। सात्त्विक मनुष्य बिना किसी फलकी इच्छाके कर्त्तव्य समझकर यज्ञ करते हैं। राजसिक आदमी फलकी इच्छा और कपटसे यज्ञ करते हैं। तामस प्रकृतिके मनुष्य बिना विधानके, बिना श्रद्धाके, बिना मन्त्रों और दक्षिणाके यज्ञ करते हैं। तप तीन तरहका होता है—शरीरका, वचनका और मनका। देव, गुरु और ज्ञानियों की पूजा, शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शारीरिक तप है। सत्य, प्रिय और हित करनेवाला ऐसा वचन बोलना जो किसीके दिलको न दुखाये, तथा स्वाध्याय करना—यह वाणीका तप है। मनकी प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, मनोनिग्रह और भावोंको शुद्ध रखना—यह मानसिक तप है। बिना फल चाहे श्रद्धासे जो तप किया जाता है वह सात्त्विक है। मान, सत्कार और पूजाकी इच्छासे किया जानेवाला तप रजोगुणी है। मूर्खतावश केवल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शरीरको सतानेवाला तप तमोगुणी है। देश, काल, पात्रका विचारकर ऐसे आदमीको, जो कभी काममें न आता हो, जो दान दिया जाता है वह सात्त्विक है। बदलेकी भावनासे किया जानेवाला दान राजस और बिना सत्कार-तिरस्कारपूर्वक अपात्रको दिया जानेवाला दान तामसिक होता है।

अठारहवाँ अध्याय---

यह अध्याय उपसंहारका है। काम्य कर्मोंको छोड़ना संन्यास कहलाता है। सब कर्मोंके फलको छोड़ना त्याग कहलाता है। कुछ ज्ञानी कर्मोंको ही छोड़ना ठीक बतलाते हैं, परन्तु दूसरे कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप तो करते ही रहना चाहिये। ये तो शुद्ध करनेवाले कर्म हैं। इनका छोड़ना ठीक नहीं। इनके भी फलकी इच्छाका त्याग करना ठीक है। कर्तव्य कर्मका त्याग ठीक नहीं है। मोहवश उनका यदि कोई त्याग कर देता है तो वह त्याग तमोगुणी त्याग है। कर्मके फलका त्याग करके कर्तव्य भावसे जो कर्म किया जाता है वह सात्त्विक त्याग है। सात्त्विक त्यागी दुःखदायी कर्मोंसे धबराता नहीं है और सुखदायी कर्मोंसे राजी नहीं होता है। कर्मोंका परित्याग तो शरीरधारीके लिये असम्भव है। कर्मोंके फलका त्याग करनेवाला ही त्यागी है।

सभी चीजें सात्त्विक, राजसिक और तामसिक हैं। संसारमें जो भी कुछ है वह सभी इन तीन गुणोंसे युक्त है। इस अध्यायमें चारों वर्णोंके धर्म भी बतलाये गये हैं। अपना-अपना जो धर्म है वह चाहे खराब भी क्यों न हो, परन्तु उसे छोड़कर दूसरेका धर्म अपनाना कदापि ठीक नहीं है। सभी कर्मोंमें दोष तो रहते ही हैं बिना धुएँके क्या कभी अग्नि हो सकती है? बस, जो भी कर्म हो उसे अनासक्तिसे करो, जरूर भगवान्‌की प्राप्ति होती है। इस अध्यायका अन्त भगवान्‌के शरणमें जानेके उपदेशके साथ हुआ है। मनुष्यको अन्तिम उपदेश है कि वह अनन्य भावसे भगवान्‌की शरणमें चला जाये। तब उसमें कोई भी पाप नहीं रहता है।

—o—

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपनिषद्

भूमिका—

वेदके अन्तिम भागका नाम उपनिषद है। जिस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थोंमें कर्मकाण्डपर जोर दिया गया है, वैसे उपनिषदोंमें वैदिक कालीन ऋषियोंने अध्यात्म-विद्याके गूढ़ रहस्योंका बड़े सुन्दर ढंगसे विवेचन किया है। ये वे ही समझे जाते हैं। भारतीय तत्त्व-ज्ञानके मूल स्रोत ये ही हैं। ये अध्यात्मविद्याके अथाह समुद्र हैं। इन्हींमें गोते लगा-लगाकर बादके ऋषियोंने अनेक दर्शनरूपी अमूल्य रत्न निकालकर विश्वको प्रकाशित कर दिया है। मानव-कल्याणके लिये भारतने जो सिद्धान्त निकाले, उनके निधि ये ही उपनिषद है।

भारतीय ऋषि भौतिक सुखको तुच्छ समझते थे। उनकी दृष्टि हमेशा शाश्वत सुख की तरफ रहती थी। परमानन्द-प्राप्तिकी खोजमें प्रवृत्त होकर उन्होंने ये अमर सत्य खोज निकाले। इनपर अमल करनेपर अवश्य ही मनुष्य परमानन्द प्राप्त कर सकता है। इनका भारतीय साहित्यमें सर्वोच्च स्थान है। इनमें वर्णित ज्ञान भारतकी अमूल्य सम्पत्ति है। इसी सम्पत्तिके कारण भारत जगद्गुरु कहलाता था। जिस समय सारा विश्व अज्ञानकी प्रगाढ़ निद्रामें पड़ा सोता था, उस समय भी भारतमें वह ज्ञान-सूर्य प्रकाशित हो रहा था, जिसमें सारे विश्वको प्रकाशित करनेकी सामर्थ्य थी।

उपनिषद्का अर्थ—

उपनिषद्का शब्द उप-नि-उपसर्गपूर्वक सद् धातुसे बनता है। इस सद् धातुके तीन अर्थ हैं—नाश होना, प्राप्ति और शिथिल करना। इनमें वर्णित ज्ञानपर आचरण करनेसे सब दुःखोंका अत्यन्त नाश हो जाता है और नित्य आनन्दकी प्राप्ति होती है; इसलिये उपनिषद् का मतलब है ज्ञान। ज्ञानका वर्णन इन उपनिषदोंमें किया गया है, अतः इन ग्रन्थोंका भी नाम उपनिषद् पड़ गया। अध्यात्मविद्याका प्रतिपादन ही एका मुख्य विषय है। इस विद्याके अध्ययन करनेसे सांसारिक विषयोंसे विरक्त मोक्षाभिलाषी जनोंका दुःखका कारणभूत अज्ञान नष्ट हो जाता है। वे ब्रह्मानन्दके नदमें गोते लगाकर अज्ञानरूपी मलसे बिलकुल रहित हो जाते हैं। फलस्वरूप वे ब्रह्मरूप बनकर सांसारिक दुःखोंसे सर्वथा रहित हो जाते हैं। उनको सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है। इस प्रकार सब दुःखोंको नष्ट कर देने तथा परमानन्द-प्राप्ति करानेके कारण अध्यात्म-विद्याका प्रतिपादन करनेवाले ये ग्रन्थ उपनिषद् कहलाये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपनिषदोंका विषय---

इनमें अध्यात्मविद्याके गूढ़ रहस्योंका वर्णन है। ब्रह्मके स्वरूप उससे पैदा होनेवाले जीव और जगत्के साथ उसका सम्बन्ध, ब्रह्मकी प्राप्तिके उपाय आदि विषयोंका इनमें विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। मोक्षके अभिलाषी लोगोंके लिये इनमें परम शान्तिका वह सुमधुर जल भरा है जिसे पीकर चित्त आप्यायित हो जाता है तथा तृष्णा की अग्नि बिलकुल शान्त हो जाती है। भारतीय दर्शनकारोंने उपनिषदोंके विषयको लेकर बड़ी भारी छानबीन की है। सभी टीकाकारोंने उपनिषदोंमें एक ही प्रकारके सिद्धान्तोंको स्वीकार किया है। बादके सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्योंने अपने-अपने मत और सम्प्रदायकी पुष्टिके लिये उपनिषदों की श्रुतियोंके प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। इनमें अद्वैतप्रतिपादक श्रुतियोंके साथ ही विशिष्टाद्वैत और द्वैतप्रतिपादक श्रुतियाँ भी मिल जाती हैं। ये सभी श्रुतियाँ युक्तियुक्त हैं। केवल दृष्टि-कोणका भेद है। अपने-अपने मतोंकी पुष्टिके लिये आचार्योंने उन्हीं श्रुतियोंपर जोर दिया है। शेष सभी श्रुतियोंको गौण सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। भगवान् शंकराचार्यने उन सारी श्रुतियोंमें अद्वैत सिद्धान्तके ही दर्शन किये हैं। श्रीरामानुजाचार्यको सभी श्रुतियाँ विशिष्टा-द्वैतपर ही नजर आयी हैं। श्रीमध्वाचार्यन उपनिषदोंकी श्रुतियोंको द्वैतमतका प्रचार करनवाली ही बतलाया है। वास्तविक बात यह है कि इनमें अनेक रत्न भरे पड़े हैं। उनमें से अपना इच्छानुसार अपनी पसंदके रत्न चुनकर विभिन्न दर्शनकारोंने अनेक मालाएँ गूँथ डाली। पीछेके दर्शनकारोंने इन्हींमेंसे भावरत्नोंका चयनकर अनेक दर्शनोंकी रचना कर डाली। आस्तिक दर्शन तो दूर रहे, नास्तिक दर्शनों तकको इनमें अपने-अपने मतकी पुष्टिके लिये प्रमाणरूपमें प्रस्तुत करनेके लिये श्रुतियाँ मिल गयी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ये तो ज्ञानके समुद्र हैं और इनमें से कोई भी अपनी-अपनी पसंदके रत्न संगृहीत कर सकता है। इनमें वर्णित विचार व्यवस्थित होनेपर भी परस्परविरोधीसे कहीं-कहींपर दिखायी पड़ते हैं। विभिन्न ऋषियोंने अपने-अपने अनुभव और चिन्तनके बलसे जो सिद्धान्त ढूँढ़ निकाले, उन सबका इनमें भण्डार भरा पड़ा है। इस तरह इनमें सामञ्जस्यका न होना स्वाभा-विक ही है।

उपनिषदोंकी संख्या---जितनी ही वेदकी शाखाएँ है उतने ही उपनिषद् थे। प्रत्येक शाखाका अपना-अपना उपनिषद् था, परन्तु आजकल वे सभी उपनिषद् नहीं मिलते हैं। आजकल १०८ उपनिषद् मिलते हैं; उनमें १० उपनिषद् ऋग्वेदसे सम्बन्ध रखते हैं। १९ शुल्क यजुर्वेदके, ३२ कृष्णयजुर्वेदके, १६ सामवेदके और ३१ अथर्ववेदके बतलाये जाते हैं। वास्तवमें उपनिषदोंकी संख्या बहुत अधिक थी। ये १०८ उपनिषद् तो उपनिषद् साहित्यके सार थे। इन १०८ उपनिषदोंमें भी केवल १२ या १३ उपनिषद् ही प्रामाणिक माने जाते

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हैं। इनमें विषयका प्रतिपादन भी विशदतापूर्वक मिलता है तथा ये ही प्राचीन भी हैं। निम्नलिखित उपनिषद् ही प्रामाणिक तथा प्राचीन माने जाते हैं——

(१) ईश
(२) केन
(३) कठ
(४) प्रश्न
(५) मुण्डक
(६) माण्डूक्य
(७) तैत्तिरीय
(८) ऐतरेय
(९) छान्दोग्य
(१०) बृहदारण्यक
(११) श्वेताश्वतर
(१२) कौषीतकि
(१३) महानारायण

ये उपनिषद् विभिन्न वेदोंसे सम्बद्ध हैं। इनमें भी वे ही उपनिषद् सबसे अधिक प्रामाणिक समझे जाते हैं, जिनपर शंकराचार्यका भाष्य मिलता है। उनका आजकल पठन-पाठनमें अधिक प्रचलन भी है। इनमें भी छान्दोग्य और बृहदारण्यक ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इनमें कुछ उपनिषद् श्लोकबद्ध हैं और कुछ गद्यमें हैं। कुछ ऐसे भी उपनिषद् हैं जो दोनोंमें हैं।

उपनिषदोंका रचनाकाल——

यह तो निर्विवाद है कि बुद्धके बहुत पहले ही उपनिषदोंकी रचना हो चुकी थी। इनकी रचना किसी एक समयमें नहीं हुई थी; परन्तु कई शताब्दियोंतक ऋषियोंने परिश्रम करके जो ज्ञान संचित किया था, वही इनमें सुरक्षित है। इनमें एक ही विषय नहीं है; किन्तु किसीमें वेदान्तके सिद्धान्त हैं तो किसीमें योगके। अनेक उपनिषदोंका निर्माण बहुत बादमें भी हुआ है। इस प्रकार उपनिषदोंके समयका निश्चित पता लगाना अत्यन्त कठिन है; फिर भी दर्शनोंकी अपेक्षा इनका समय अत्यन्त प्राचीन है।

उपनिषदोंमें वर्णित तत्त्व——

उपनिषदोंमें वर्णित तत्त्व बहुत ऊँची कोटिके तत्त्व हैं। उपनिषदोंमें मुख्यतया

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आत्म तत्त्वका विवेचन किया गया है। भारतीय महर्षियोंने भौतिक सुखको क्षणभंगुर समझकर अविनाशी तत्त्वकी खोजमें ही अपना जीवन लगाया और अन्तमें उस परम तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया। आत्मतत्त्वके विवेचनके साथ ब्रह्म-तत्त्वका भी विवेचन उपनिषदोंका विषय है। इनमें आध्यात्मिक चिन्तनके साथ-साथ मानव-जीवनके लिये परमोपयोगी शम, दम, तितिक्षा आदि साधनोंका भी विवेचन किया गया है। ये प्रायः सभी उपनिषदोंमें समानतया मिलते हैं। उपनिषदोंके तत्त्वोंके पृथक-पृथक विवेचन यहाँ परिचयके लिये दिये जा रहे हैं।

आत्मा---

उपनिषदोंमें आत्माका विवेचन खूब विशद रूपमें किया गया है। आत्मा क्या वस्तु है? आत्माकी सत्ता इस जीवन समयतक ही वर्तमान रहती है या इस जीवनके बाद भी उसका अस्तित्व यथावत् बना रहता है। इन प्रश्नोंका विवेचन उपनिषदोंमें खूब किया गया है। उदाहरणार्थ कठोपनिषद्में एक छोटी-सी अवस्थाके बालक नचिकेताने मृत्युके अधिष्ठाता देव यमसे इसी प्रकारके प्रश्न पूछे हैं। यम उसे सांसारिक सुख माँगने के लिये लालच देता है परन्तु बालक नचिकेता सांसारिक सुखोंको इसी आधारपर ठुकरा देता है कि वे क्षणभङ्गुर होनेके कारण वास्तविक आनन्द देनेवाले नहीं हैं, अतः कोई भी समझदार मनुष्य सांसारिक भोग-विलासोंकी तरफ आकृष्ट नहीं हो सकता। वस्तुतः सच्चा सुखदायक तो आत्मज्ञान ही है। इसलिये उसे (नचिकेताको) तो आत्माका स्वरूप ही बतलाया जाये। यमने नचिकेताकी प्रार्थना पर उसे आत्माका रहस्य समझाया। आत्माका तत्त्व बड़ा गहन है। उसका जानना साधारण बात नहीं है। यह कभी मरता नहीं है, न यह कभी पैदा होता है और न इसमें अवस्थाओंके कारण कभी विकार ही पैदा होता है। यह हमेशा एक-सा रहता है। यह रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श और इन पाँचों विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंसे, संकल्प-विकल्प-रूप मनसे, विवेचना करनेवाली बुद्धिसे और जीवोंकी स्थितिके कारणभूत प्राणोंसे सर्वथा भिन्न है। जैसे एक रथका स्वामी रथसे, घोड़ों से, सारथीसे और घोड़ोंकी लगामसे बिल्कुल भिन्न होता है, वैसे ही आत्मा भी शरीर आदिसे एक अलग ही चीज है। यह आत्मा एक प्रकारसे इस शरीररूप रथका अधिष्ठाता है बुद्धि इस रथका सारथि है। मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन सबका अस्तित्व उस आत्मारूपी रथीकी सहायताके लिये है। इस प्रकार आत्मा ही इस शरीररूपी रथका स्वामी है। उसीकी प्रेरणासे यह रथ चलता है।

यह आत्मा जगतकी सारी चीजोंमें व्याप्त रहता है। यह हमेशा रहनेवाली चीज है। यही जीवनकालमें सारे विषयोंका अनुभव करता है। यह संसार एक कल्पित वस्तु है, इसलिये उसकी सत्ता माननेके लिये आत्माका होना नितान्त जरूरी है। जैसे रस्सीको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्धकारमें पड़ी देखकर जब उसमें साँपका भ्रम होता है, तब सर्पका अस्तित्व बिलकुल कल्पित है; परन्तु उस कल्पित सर्पका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिये रस्सीका होना जरूरी है। रस्सीके होनेपर ही सर्पका उसमें भ्रम हो सकता है। यदि रस्सी न हो तो कभी साँपका भ्रम नहीं हो सकता। उसी प्रकार यदि आत्माको न माना जाय तो कल्पित संसार (अनेकता) का उसमें भ्रम हो ही नहीं सकता। इसलिये आत्माकी सिद्धि संसारको माननेके लिये स्वतः ही हो जाती है। आत्मासे प्राणिमात्र जीवित रहते हैं।

आत्माका विवेचन उपनिषदोंमें खूब किया गया है। आत्माको ऋषियोंने चैतन्य-स्वरूप माना है। चेतना चार प्रकारकी होती है––शरीरचैतन्य, स्वप्नचैतन्य, सुषुप्ति-चैतन्य और अत्मा चैतन्य। इन सबमें आत्मचैतन्य पूर्वोक्त तीनों प्रकारके चैतन्यसे बिलकुल भिन्न है। यह आत्म-चैतन्य शुद्ध और विकाररहित है। इस बातको छान्दोग्य उपनिषद्में दृष्टान्तके द्वारा समझाया है। उसमें बड़ी सुन्दर कथाद्वारा इस बातको दिखाया है। देवता और असुरोंने आत्माका सच्चारूप जाननेके लिये क्रमशः इन्द्र और विरोचनको अपना-अपना प्रतिनिधि बनाकर ब्रह्माजीके पास भेजा। विरोचन तथा इन्द्र, दोनोंने ब्रह्माको प्रसन्न करने के लिये कठोर तपस्या प्रारम्भ की। वर्षों तक तप करनेके बाद ब्रह्माजी प्रकट हुए और बोले–– 'आँखोंमें, जलमें और दर्पणमें जो पुरुष दीखता है वही आत्मा है।' विरोचन ब्रह्माजीके इस कथनसे सन्तुष्ट हो गया। उसने वास्तवमें उसे ही आत्मा मान लिया, परंतु इन्द्रको इस उत्तरसे पूर्ण संतोष नहीं हुआ। उसके मनमें यह शंका पैदा हुई कि यदि शरीरका ही नाम आत्मा है तब शरीरके अंधा, काना या लँगड़ा होनेपर आत्माको भी वैसा ही होना चाहिये; परंतु ऐसा होता नहीं है; अतः शरीरचैतन्य ही आत्म-चैतन्य हो नहीं सकता। इन्द्र, के इस प्रकार शंकित होनेपर ब्रह्माजीने स्वप्नचैतन्यको आत्मा बतलाया, परंतु शंकाका निराकरण नहीं हो सका; क्योंकि स्वप्नमें तो मनुष्य दुःखका अनुभव करता है, रोता भी है; परन्तु आनन्दरूप आत्मामें क्या दुःखका सम्पर्क माना जा सकता है? इन्द्रको संतुष्ट न देखकर ब्रह्माजीने इन्द्र, को सुषुप्ति-चैतन्यको आत्मा बतलाया, परंतु इन्द्रको फिर भी संतोष नहीं हुआ। उसने शंका की––'सुषुप्तिके समय न तो मनुष्यको अपनी सत्ताकाज्ञान रहता है और न बाहरी वस्तुओंका ही ज्ञान रहता है, अतः उसे आत्मा कैसे माना जा सकता है?' तब ब्रह्माजीने इन्द्रको आत्माका वास्तविक स्वरूप समझते हुए कहा––'इन तीनो प्रकारके चैतन्योंसे बिलकुल अलग उपाधिरहित जो शुद्धचैतन्य है वही आत्मा है। आत्मा शुद्ध चैतन्यरूप है। आगेके दर्शनकारों-ने उसी आत्माका स्वरूप विभिन्न रूपसे समझाया है।

माण्डूक्य उपनिषद्में भी आत्माको तुरीय बतलाया गया है और जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति––ये आत्माकी अनेक अवस्थाएँ बतलायी गयी हैं। जाग्रत अवस्थामें आत्माको बाहरी चीजोका अनुभव होता रहता है, स्वप्न अवस्थामें वह अंदरके मानसिक संसारका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुभव करता है और सुषुप्ति अवस्थामें वह केवल आनन्दरूपका अनुभव करता है। ये तीनों अवस्थाएँ आत्माकी अपर अवस्थाओं को सूचित करती हैं। वास्तवमें इन तीनों अवस्थाओंमें आत्माके अंशमात्रका परिचय मिलता है, परंतु पूर्ण आत्मामें उन गुणोका बिलकुल अभाव रहता है, जो इन तीनों अवस्थाओंमें मिलते हैं। पूर्ण आत्मामें न बाहरी चीजोंका अनुभव होता है और न आन्तरिक मानस संसारका ही अनुभव होता है। इन दोनोंका ही अनुभव नहीं होता है। उसमें इन सभी गुणोंका सर्वथा अभाव रहता है। उस आत्माको कोई नेत्रोंसे देख नहीं सकता है। उसे अन्य इन्द्रियोंसे भी ग्रहण नहीं किया जा सकता है। उसका कोई चिह्न भी नहीं दिखायी पड़ता है। उसका मन भी चिन्तन नहीं कर सकता है। उसको किसी नामसे भी नहीं पुकारा जा सकता है। वह शान्त, शिव और अद्वैत है। उसीको जाननेका प्रयत्न करना चाहिये। वह पूर्वोक्त जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओसे भिन्न होनेके कारण तुरीय (चतुर्थ) कहलाता है। यह आत्मा कूटस्थ, अविकारी और एक है। ओंकार इसीका द्योतक अक्षर है।

ब्रह्मका विवेचन---

उपनिषदोंमें आत्माके विवेचनके साथ ब्रह्मका भी विवेचन किया गया है। यही एक सदा रहनेवाला तत्त्व है। इस नाना नाम-रूपात्मक जगत्के मूलमें विद्यमान् वह शाश्वत सत्तावाला पदार्थ ब्रह्म ही है। इसकी खोजमें उपनिषद्-कालके ऋषियोंने बड़ा भारी परिश्रम किया। इसकी खोजमें उन्होंने कई उपायोंको काममें लिया। उन्होंने आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकारके पदार्थ माने हैं। आधिभौतिक और आधिदैविक पदार्थोंकी खोज करते-करते आध्यात्मिक पदार्थोंकी खोज उन्होंने कर डाली। अध्यात्मिक पदार्थोंके भी मूलमें एक परम सत्य पदार्थ है, जिसे ब्रह्म कहा जाता है। वह ब्रह्म वस्तुतः आत्मासे अभिन्न ही है।

ब्रह्मके दो भेद---

यह ब्रह्म भी दो प्रकारका है--सगुण और निर्गुण। इन दोनोंमें भेद दिखानेके लियें निर्गुण ब्रह्मको परब्रह्म और सगुण ब्रह्मको अपरब्रह्म भी कहा गया है। निर्गुण ब्रह्म वह है जिसे किसी नाम या लक्षणसे लक्षित नहीं किया जा सकता। इसका कोई ऐसा चिह्न हम नहीं प्रस्तुत कर सकते हैं, जिससे इसकी पहिचान की जा सके। न कोई ऐसा गुण ही बतला सकते हैं जो इसमें मिल सके। इसीलिये इसे निर्गुण निरुपाधि, निर्विशेष और निर्विकल्प आदि नामोंसे पुकारा जाता है। सगुण ब्रह्म इसके बिलकुल विपरीत होता है। उसमें सत्त्व, रज और तम--ये तीनों गुण भी रहते हैं और चिह्नों, विशेषणों और लक्षणोंसे भी वह युक्त होता है जिससे उसके रूपका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इन दोनों प्रकारके ब्रह्मका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निरूपण करनेवाली श्रुतियाँ उपनिषदोंमें हैं। उपनिषदोंमें सगुण ब्रह्मके लिये पुल्लिङ्ग शब्दोंका प्रयोग किया गया है और निर्गुण ब्रह्मके लिये सर्वत्र नपुंसक लिङ्ग शब्दोका प्रयोग हुआ है। इस प्रकार दोनोंमें भेद होते हुए भी दोनोंमें कोई वास्तविक भेद उपनिषदोंमें दृष्टिगोचर नहीं होता है। परम तत्त्व एक ही है, चाहे उसे सगुण कहें या निर्गुण।

सगुण ब्रह्म---

किसी भी चीजका परिचय प्राप्त करनेके लिये उसका लक्षण किया जाता है। यह लक्षण दो तरह का होता है—तटस्थलक्षण और स्वरूपलक्षण। किसी चीजके बदलनेवाले गुणोंका वर्णन जिसके द्वारा किया जाता है वह तटस्थलक्षण कहलाता है और जिसके द्वारा किसी चीजके शुद्ध रूपका परिचय मिल सके वह स्वरूपलक्षण कहलाता है। उपनिषदोंमें सगुण ब्रह्मके दोनों प्रकारके ही लक्षण मिलते हैं।

स्वरूपलक्षणके अनुसार तो ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त माना जाता है और तटस्थ लक्षणके अनुसार सगुण ब्रह्मको संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण माना गया है। सगुण ब्रह्म ही सारे जगत्का कारण है। उससे जगत् पैदा होता है और उसीमें लीन हो जाता है। सगुण ब्रह्म ही सारे संसारका शासक है। वह इस सारे संसारका अधिष्ठाता है। वही अच्छे या बुरे कर्म करनेवाले प्राणियोंको कर्मोंके अनुसार अच्छा या बुरा फल देता है। उसी सगुण ब्रह्मका नाम विराट् और हिरण्यगर्भ है। विश्वके सारे प्राणी उसीके शरीर माने जाते हैं। उसकी शक्ति अत्यन्त विशाल है। उसीकी शक्तिसे देवता भी देवता बने हुए हैं। सूर्य, चन्द्रमा उसीकी अनन्त शक्तिके एक अंशसे चमकते हैं। अग्नि उसीकी शक्तिसे जलता है। वायु उसीकी शक्तिसे चलता है। उसीकी शक्तिसे सारे संसारका संचालन होता है। उसकी शक्ति अनन्त है। उसीकी आज्ञासे नक्षत्र अपने नियत कक्षमें घूमते हैं। उसकी आज्ञाके बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। इस प्रकार सगुण ब्रह्मकी उपनिषदोमें बड़ी महिमा गायी गयी है।

निर्गुण ब्रह्म---

निर्गुण ब्रह्मका परिचय किसी लक्षणके द्वारा देना बिलकुल असम्भव है। उसका न कोई चिन्ह है और न कोई उसमें गुण है। उसका किसी भी शब्द के द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता। किसीका भी निर्देश किसी गुणसे ही हो सकता है, और निर्गुण ब्रह्ममें किसी भी गुणका अस्तित्व रह नहीं सकता है, अतः उसका निर्देश हो नहीं सकता है। उसका परिचय 'नेति' शब्दसे ही दिया जा सकता है। वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे रहित है। न उसका कहीं आदि है और न उसका अन्त है। न वह मनका विषय है और न इन्द्रियोका ही विषय है। इस जगत्में सारे प्रकाशका कारण वह ब्रह्म ही है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जगत्---

इस जगत्का उपादान तथा निमित्त कारण ब्रह्म ही है। जिस प्रकार मकडी अपने शरीरसे जाल तानती है और बादमें अपने शरीरमें समेट लेता है, इसी प्रकार उस ब्रह्मसे ही यह सृष्टि पैदा होती है। सबसे पहले आकाश पैदा होता है। आकाशसे वायु पैदा होता है। वायुसे अग्नि पैदा होता है और अग्नि से जल पैदा होता है। सबके अन्तमें जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। पृथिवीसे सारे चराचरकी उत्पत्ति होती है। इस जगत्के लय होने का क्रम ठीक इससे उलटा है।

उपनिषदोंकी शिक्षा---

आध्यात्मिक उन्नति करनेके लिये मनुष्यको अनेक अच्छे-अच्छे गुण ग्रहण करने पड़ते हैं। इन गुणोंके बिना केवल वाक्यज्ञान मात्र या उपदेश मात्रासे कोई भी आध्यात्मिक मार्गका पथिक नहीं बन सकता। उसको अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखना पड़ता है। दान और दयाका भी अभ्यास उस मनुष्यको करना पड़ता है। तपस्या, ऋजुता (सरलता), अहिंसा और सत्यका पालन भी नितान्त आवश्यक है। ये सभी गुण प्रत्येक मनुष्यके लिये नितान्त आवश्यक हैं। मानव इन गुणोंके बिना मानव ही कहलानेका अधिकारी नहीं होता। ये ही गुण मनुष्यको पशुसे अलग करनेवाले हैं। आज के जीवनमें इन गुणोंका अभाव है, इसीलिये आजका मनुष्य स्वार्थके दलदलमें फँसकर कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर रहा है।

उपनिषदोंमें गुरुकुलसे विद्या पढ़कर निकलनेवाले स्नातकोंको बड़ी अच्छी शिक्षा दी गयी है। मुख्यतया तैत्तिरीय उपनिषद्में इस शिक्षाकी प्रधानता है। माता, पिता और गुरुकी सेवा करना स्नातकका प्रधान धर्म बतलाया गया है। स्वाध्याय और धर्मका आचरण भी स्नातकके लिये आवश्यक हैं। सत्य बोलना उसका परम धर्म बतलाया है। स्नातकको कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिये। यही सब धर्मोंमें मुख्य है। सत्यकाम जाबालकी कथामें सत्य भाषणपर बहुत जोर दिया गया है। जगह-जगह उपनिषदोंमें असत्यभाषणकी निन्दा और सत्य भाषणकी प्रशंसा की गयी है। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधानपर भी बहुत जोर दिया गया है।

ज्ञान प्राप्त करनेके अभिलाषी मनुष्यमें विवेक और वैराग्य भी होने चाहिये। विवेक उत्पन्न होनेपर ही मनुष्यमें वैराग्यका उदय होता है। तथा वैराग्य होनेपर ही वह ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये तैयार होता है। वैराग्यके बिना मनुष्य इस संसार में बुरी तरह फँसा रहता है और स्वार्थके पंकमें डबा रहता है। उसका चित्त कभी तत्त्वज्ञानकी ओर आकृष्ट नहीं होता कर्मोंके द्वारा प्राप्त लोकोंको नाशवान बतलाकर उपनिषदोंमें ज्ञानकी बडी महिमा गायी है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस संसारमें मनुष्यकी दो प्रकारकी प्रवृत्तिदेखी जाती है। कुछ मनुष्य शुभ कर्मकी तरफ आकृष्ट देखे जाते हैं जब कि कुछ केवल बुरे कामोंमें ही आसक्त हैं। ऐसी स्थितिमें समझदार मनुष्यको अपने विवेकसे काम लेना चाहिये तथा अशुभ कर्मोंकी तरफ झुकाव बिल्कुल नहीं रखना चाहिये। यदि बुरे कर्मोंकी तरफ वासना हो तो भी उस वासनाको विवेकज्ञानकी अग्निसे भस्म कर डालना चाहिये और शुभ कर्मोंमें ही अनुराग पैदा करना चाहिये। जैसे ऊसर भूमिमें डाला हुआ बीज नहीं उगता है उसी प्रकार ज्ञानयुक्त मनुष्यमें वासनाएँ नहीं जन्म लेती हैं। वासनाओंके नष्ट हो जानेपर मनुष्य कभी दुष्कर्मकी ओर प्रवृत्त हो ही नहीं सकता। ये बुरी वासनाएँ ही सारे पापों और अनर्थोंकी जड़ हैं; उपनिषदोंमें ऐसी शिक्षाओं का एक अपूर्व भंडार सुरक्षित है, जिनसे मनुष्य जीवन की समुन्नत दशाको प्राप्त कर सकता है।

उपनिषदोंमें वर्णित लोक---

इस ब्रह्माण्डके भीतर अनेक लोक हैं, जिनमें ब्रह्मलोक ही सबसे ऊँचा तथा श्रेष्ठ बतलाया गया है। मनुष्य मरने के बाद अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जिन-जिन मार्गों से होकर विभिन्न लोकोंको पहुँचते हैं, उनका भी उपनिषदोंमें विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। उनकी यात्राके मुख्य दो मार्ग हैं--देवयान और पितृयान। ज्ञानपूर्वक श्रद्धा और तपस्या के साथ श्रेष्ठ कर्म करने वाला मनुष्य देवयान नामक मार्ग के द्वारा ब्रह्मलोकमें जाता है ब्रह्मका लोक आनन्दमय है। वहाँ पहुँचकर भी मनुष्य अपने उपासना आदि श्रेष्ठ कर्मोंको करता ही रहता है और फलस्वरूप अन्तमें ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

श्रुति और स्मृतिविहित कर्म करनेवाले मनुष्य पितृयान नामक मार्गसे चन्द्रलोकमें जाते है और अपने-अपने कर्मोंके अनुसार वहाँपर सुख भोगकर फिर मर्त्यलोकमें लौट आते हैं। यदि उनका कुछ पुण्य बाकी रह जाता है तो यहाँ आकर वे धनवान् घरमें जन्म लेते हैं और यदि पाप शेष रहता है तो उनका जन्म ऐसे दरिद्र घरमें होता है कि वे निरन्तर दुःख भोगते रहते हैं। इस जन्ममें यदि वे उपासना आदि शुभ कर्म करते हैं तो उनको अन्तमें देवयान मार्गसे जाकर ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाता है। इसका नाम उपनिषदोंमें क्रम-मुक्ति है। इनमें देवमार्ग ज्ञानियोंका मार्ग है और यही श्रेष्ठ है। पितृयान मार्गसे कर्मपरायण लोगोंको जाना पड़ता है। यह मार्ग देवयानकी अपेक्षा निकृष्ट कोटिका है। इन दोनों मार्गोंके अतिरिक्त एक तीसरा मार्ग भी है जिसे मार्ग न कहकर गति कहना अधिक उपयुक्त है। यह गति जिन प्राणियोंकी होती है वे जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। जीवन में कोई शुभ कर्म नहीं करते हैं। पशु-पक्षियोंकी भाँति ऐसे ही जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। शुभ कर्मोंके अधिकारी होते हुए भी वे कभी शुभ कर्म न करके हमेशा दुष्कर्मोंमें रत रहते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी मनुष्य हैं, जो क्रम-मुक्ति न चाहकर तुरंत मुक्ति (सद्योमुक्ति) चाहते हैं। उपनिषदोंमें ऐसी मुक्ति भी बतलायी है। वास्तवमें इस सांसारिक बन्धनका कारण है--आत्मज्ञानका न होना। संसारके भोगोंमें आसक्त रहनेवाला मनुष्य जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ा रहता है और वह कभी भी इस बन्धनसे छुटकारा नहीं पाता। इसके विपरीत ज्ञानी मनुष्य सर्वत्र समताका अनुभव करता है और प्राणि मात्रको समान समझकर ज्ञानके मार्गका पथिक हो जाता है। वह ज्ञानी मनुष्य देहाभिमानका बिलकुल परित्याग कर देता है। उसके सभी कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही होते हैं। वह प्राणि-मात्रको ब्रह्मका रूप समझता है। ऐसा मनुष्य सद्योमुक्तिका अधिकारी बन जाता है। उसके हृदयसे सब इच्छाएँ निकल जाती हैं। न उसे कोई दुःख सताता है और न सुख उसे हर्षित करता है। वह सुख और दुःखको एक समान समझता है। वह किसी भी प्राणीसे कभी द्वेष नहीं करता है, प्रत्युत सभी प्राणियोंको अपने आत्माके समान समझता है। वह मनुष्य अमृत बन जाता है। वह जन्म-मरण आदिके बन्धनोंसे बिल्कुल रहित हो जाता है। वह इसी जीवनमें जीवनमुक्त हो जाता है। प्राणिमात्रमें समताका भाव रखनेवाला मनुष्य हमेशा ब्रह्ममें ही विचरता है। मनुष्यमात्रका यह कर्तव्य है कि वह अपने जीवनमें हमेशा ऐसे ही ऊँचे आदर्श अपने सम्मुख रक्खे। अपने बहुमूल्य जीवनको साधारण सुखोंकी प्राप्तिमें व्यर्थ ही नष्ट नहीं करना चाहिये। मानव जीवनका लक्ष्य ब्रह्मकी प्राप्ति ही होनी चाहिये। आत्माका साक्षात्कार ही ब्रह्म प्राप्तिका सीधा और सच्चा मार्ग है।

ज्ञानी मनुष्यको कर्मोंका फल नहीं भोगना पड़ता। वह निष्काम कर्म के सेवनसे अपने हृदयको परम पवित्र बना लेता है। उसके हृदयमें कभी दुर्वासनाएँ आती ही नहीं हैं। कर्मों का बन्धन उसी मनुष्यको बाँध सकता है जो कर्मोंमें आसक्ति रक्खे। कर्तव्य समझकर कर्मोंका सेवन करनेवाला मनुष्य कभी कर्मोंमें आसक्त नहीं होता है, अतः ऐसे मनुष्यकी सद्योमुक्ति स्वतः हो जाती है।

उपनिषदोंका अन्तिम लक्ष्य----

उपनिषदों का अन्तिम लक्ष्य है आत्माकी साक्षात् अनुभूति। केवल वाक्यज्ञान मात्रको उपनिषद् अनावश्यक और भार बतलाते हैं। आत्माकी सच्ची अनुभूति प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य है। इस कठिन कार्यका सम्पादन करनेके लिये मनुष्यको एक ऐसे सहायककी आवश्यकता रहती है जो उसे मार्ग दिखा सके। उस मार्गदर्शकका नाम है गुरु। गुरुकी बड़ी भारी महीमा है। बिना गुरुकी कृपाके कभी आत्माकी साक्षात् अनुभूति हो ही नहीं सकती। आत्माकी अनुभूति होते ही मनुष्यका अन्तस्थल आलोकित हो जाता है। वह सांसारिक सुखोंको तुच्छ समझकर अनन्त सुखकी खोजमें लग जाता है। वह अनन्त सुख है आत्माकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुभूति। आत्मानुभूतिसे मनुष्य विश्वमें एकताका अनुभव करने लगता है। विश्वकी एकताका अनुभव ही मनुष्यकी सर्वोच्च स्थितिमें ले जानेवाला है। इस आत्मतत्त्वका नाम है भूमा। बस, उपनिषदोंकी दृष्टिमें यह भूमाका सुख ही सच्चा सुख है। इस प्रकार आत्माकी प्राप्ति ही उपनिषदोंका लक्ष्य है। वही ब्रह्मप्राप्ति या ब्रह्मसाक्षात्कार है।

स्वाराज्यकी प्राप्ति---

आत्मा की अनुभूति होनेपर मनुष्य स्वाराज्य प्राप्त कर लेता है। जिस मनुष्यको स्वाराज्यकी प्राप्ति हो जाती है वह आत्मासे ही प्रेम करता है, अपने आत्मासे ही क्रीड़ा करता है। अपने आत्मामें ही आनन्दका अनुभव करता है। आत्मा तो आनन्दस्वरूप है ही, अतः आत्मानुभूतका अर्थ है आनन्दमय रूपमें सतत विहार करना। स्वराज्यका अर्थ है आत्माके स्वतन्त्र राज्यमें विचरण करना। यह दशा धन्य है और धन्य है वे महापुरूष जो इस दशाका अनुभव करते हैं। इस दशाका अनुभव अरनेवाले मनुष्यकी सारी इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं। इस दशामें जो सुख मिलता है, क्या उसका वर्णन किया जा सकता है? कदापि नहीं। इस अवस्थामें पहुँचे हुए मनुष्यकी वाणीका व्यापार बंद हो जाता है। वह गूँगा-सा बन जाता है। वह उस समय निरतिशय आनन्दका अनुभव करने लगता है। वह शिवरूप बन जाता है। यह दशा अनिर्वचनीय है। केवल इसका अनुभव ही किया जा सकता है। वाणीद्वारा इसका वर्णन सर्वथा असम्भव है। यही उपनिषदोंका सार है। इसीलिये भारतीय साहित्यमें उपनिषदोंका अपूर्व और सर्वोच्च स्थान है। सम्भवतः जीवनकी यह आनन्दमय अनुभूति उपनिषदोंकी ही विशेषता है। भारतीय साहित्यने सदासे ही जीवनके आनन्दमय पक्षको ही स्वीकार किया है। दुःखवादको भारतने कभी भी नहीं अपनाया। हमारा सिद्धान्त आनन्द-प्राप्तिका ही हमेशासे रहा है। आत्मज्ञानी सदा आनन्दमय लोकमें निर्भय हो विचरण करता है। उसे न मृत्युका भय है और न किसी संतापका। वह नित्य तृप्त रहता है। उसे कभी कोई असंतोष या तृष्णा सता ही नहीं सकते। धन्य है वे महापुरुष जो इस स्थितिको प्राप्त करके विश्वके सारे प्राणियोंको अपना ही समझते हुए संसारके सब व्यवहार निष्काम भावसे करते हुए कमलके पत्तेकी भाँति बिलकुल निर्लेप रहते हैं।

मुख्य-मुख्य उपनिषदोंका पृथक्-पृथक् परिचय—

जैसा पहले बतलाया जा चुका है कि उपनिषदोंकी संख्या बहुत अधिक है, परंतु उनमें प्रसिद्ध उपनिषद् केवल १२ या १३ ही हैं। उन्हींपर भगवान् शंकराचार्य ने भाष्य भी लिखे हैं, अतःवेही प्रामाणिक और प्राचीन माने जाते हैं, इसलिये इनका परिचय यहाँपर दिया जायगा। सूचीमें दिये हुए उन तेरह उपनिषदोंका परिचय संक्षेपमें नीचे दिया जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ईशावास्योपनिषद्----

यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेदका है। इसमें यह बतलाया गया है कि इस सारे जगत्में जो कुछ दिखाई पड़ता है वह सब कुछ ईशका ही निवास है। ईश्वर सर्वव्यापक है। त्याग-भावसे इस संसारके पदार्थोंका उपभोग करना चाहिये। ईश्वरकी पूजाके लिये ही कर्मोंका आचरण करना चाहिये। भोग्य पदार्थोंपर किसीका भी अधिकार नहीं है, वे केवल भगवान्के ही उपयोगके लिये हैं।

मनुष्यको निष्कामभावसे कर्म करते हुए ही सौ वर्षतक जीवित रहनेकी इच्छा रखनी चाहिये। कर्मोंमें लिप्त कभी नहीं होना चाहिये। जिस परमात्माको प्रसन्न करनेके लिये कर्मोंका विधान है वह परमात्मा सर्वव्यापक है, वह सबके दूर भी है और निकट भी है, सबके अन्तरमें वर्तमान है। सारे जगत् का संचालन उसीकी कृपासे होंता है। ये सारे प्राणी उस परमात्माके ही अंश है तथा वही इन सारे प्राणियोंका आधार है। परमात्माका ज्ञान करनेपर मनुष्यको कोई भी शोक आदि भाव नहीं सताते हैं। अज्ञानी मनुष्य इस संसारके आवागमनके चक्रमें फँसे रहते हैं। ज्ञानी मनुष्य अमृतको प्राप्त कर लेते हैं। ज्ञानी मनुष्य अपने स्वार्थके लिये कोई भी कर्म नहीं करता है। उसके सभी कर्म भगवान्की तृप्ति के लिये ही होते हैं। सारे प्राणी ही उसके लिये भगवानके रूप हैं। उनको खुश रखना ही वह अपना प्रधान कर्तव्य समझता है। इस प्रकार वह जीवित रहते हुए भी मुक्त ही है।

केन उपनिषद्----

यह उपनिषद् सामवेदका है। सबसे पहला शब्द इसमें 'केन' है। इसलिये इसका नाम केन है। इस उपनिषद्में ब्रह्मको ही समझाया गया है। यह गुरु और शिष्यकी बात-चीतके रूपमें है। सर्वप्रथम शिष्य गुरुसे पूछता है--'मन, प्राण, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को अपना-अपना काम करनेमें कौन लगाता है?' गुरुने शिष्यके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उसे समझाया कि 'वह ब्रह्म है, जिसका न वाणी बखान कर सकती है, न मन जहाँ तक पहुँच सकता है, न आँख जिसे देख सकती हैं, न कान जिसे सुन सकते हैं। वह इन इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किया जा सकता; किन्तु इन सब इन्द्रियोंको वह चलानेवाला है। इस उपनिषद्में ब्रह्मको बड़ी सुन्दर कहानी द्वारा समझाया गया है। देवतालोग अपने को ही सब कुछ मानते थे। वे अपनेको संसारका कर्त्ताधर्त्ता मानते थे। अग्नि अपनेको ही संसारमें श्रेष्ठ समझता था। वायु अपने को ही सबसे बलवान् समझता था। इन्द्र अपनेको देवताओंमें श्रेष्ठ समझता था। वे सभी उस भगवान्को भूले हुए थे। परमात्मा ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उसने एक यक्षका रूप बनाया। वह तुरन्त देवताओंके पास गया। उसके भयंकर रूपको देखकर देवता अचंभेमें पड़ गये। उन्होंने यक्षका रूप जानने के लिये अग्नि को भेजा। अग्निभी तुरन्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अभिमानके साथ उसके पास गया। अग्निसे यक्षने परिचय पूछा। अग्निने कहा 'मेरा नाम है अग्नि और मैं सारी दुनिया को जला सकता हुँ।' यक्षने एक तिनका देकर अग्निसे उसे जलानके लिये कहा, परन्तु अग्नि उसे नहीं जला सका। इसपर वह लज्जित होकर चला गया। वायुभी यक्षकके पास उसका परिचय पानेके लिये गया। यक्षने उसे भी एक तिनका दिया और उड़ानेके लिये कहा। वायु उसे उड़ानेमें समर्थ नहीं हो सका। वह भी बड़ा शर्मिन्दा हुआ और चला गया। तब इन्द्र उस यक्षका परिचय पानके लिये गया। यक्ष इन्द्रको देखकर आकाशमें छिप गया। इन्द्र यक्षको न देखकर लज्जित हुआ। इसके बाद इन्द्रने भगवती उमाको देखा। उसने इन्द्रको बतलाया कि उस भगवान्की शक्तिसे ही आप लोग देवता बने बैठे हैं। भगवान्की शक्तिसे ही सूर्य चमकता है। सारी दुनियाका वह भगवान् ही संचालन करता है। उसकी बिना इच्छाके तिनका भी नहीं हिल सकता है। तबसे देवताओंको भगवान्के स्वरूपका ज्ञान हुआ। इसीलिये वे देवता कहलाये। इस तरह ब्रह्मको बड़ी रोचक कहानीद्वारा इसमें समझाया है।

कठोपनिषद्----

यह उपनिषद् भी शुक्ल यजुर्वेदका ही है। इसमें बालक नचिकेता और यमकी बातचीत बड़ी सुन्दर तथा रोचक है। वाजश्रवा नाम्के ऋषिके उद्दालक नाम्के पुत्र थे। उन्होंने विश्वजित् यज्ञ किया था। उसमें उन्होंने सब कुछ दक्षिणामें दे डाला। उनके पास बुढ़ी गायें थीं; वे भी उन्होंने ब्राह्मणोंको दे दीं। इस ऋषिके नचिकेता नामक एक बालक था। उसने अपने पिताके इस कार्यका विरोध किया। इसपर पिताने नाराज होकर उसे यमलोकमें भेज दिया। पुत्रभी प्रसन्नताके साथ यमलोक चला गया। वहाँ जानेपर उसे मालूम हुआ कि यमराज कहीं पर किसी कामसे बाहर गये हुए हैं। वह उनकी प्रतीक्षामें वहाँ उनके दरवाजे पर बैठा रहा। तीन दिन प्रतीक्षा करने के बाद यम जब आय तो उन्होंने ब्राह्मणके बालकको भूखा और प्यासा अपने दरवाजेपर देखकर उससे कहा--'हे अतिथि! तुम तीन दिन तक भूखे और प्यासे रहकर मेरे दरवाजे पर बैठे रहे हो, इसलिये तुम मुझसे तीन वरदान मांग लो।' इसपर नचिकेताने प्रथम वरदान यह माँगा कि जब वह वापिस अपने पिताके पास मर्त्यलोक में जाय तो पिता उसे पहचान ले तथा उसका क्रोध उसपर बिलकुल भी न रहे। दूसरे वरदानमें उसने यज्ञमें अग्निचयनकी विधि पूछ ली। तीसरे वरदानमें उसने गूढतम आत्मविद्या प्राप्त कर ली। यद्यपि यमराजने उसे संसारके सुख धन दौलत आदि माँगनेके लिये कहा, पर उस बालक ने तो संसारके सुखोंको नाशवान् समझकर उन्हें नहीं लिया और केवल आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेका ही यमसे हठ किया। इसपर यमराजने उससे आत्माका सारा रहस्य बतला दिया। यमराजने कहा--'इस संसारमें दो रास्ते हैं एक श्रेय और दूसरा प्रेय। प्रेयमार्ग दीखनेमें बड़ा सुखदायी मालूम पड़ता है, परंतु वास्तवमें सुखदायी नहीं है। श्रेय-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मार्ग कठिन अवश्य है। परंतु है बड़ा आनन्द देनेवाला। पहलेको अविद्या और दूसरेको विद्या कहते हैं। विद्या (ज्ञान) के मार्गपर चलनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें पहुँचकर आनन्द-मय बन जाता है। यह आत्मा न कभी मरता है और न कभी जन्म लेता है। यह तो शाश्वत है। यह आत्मा रथी है। शरीर रथ है। बुद्धि सारथि है। मन लगाम है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं। अज्ञानी के ये इन्द्रियाँरूपी घोड़े वशमें नहीं रहते हैं। और उसे चाहे जहाँ ले जाते हैं। ज्ञानी इन्द्रियोंको वशमें रखता है। अज्ञानी कभी उस परम पदको प्राप्त नहीं कर सकता है। ज्ञानी मनुष्य उस परम पदको प्राप्त कर लेता है जहाँ पहुँचनेपर मनुष्य कभी वापिस नहीं आता है।

वह परमात्मा अग्नि, वायु तथा सूर्यके समान सर्वव्यापक है। आत्मज्ञानी हमेशा टिकनेवाली शान्तिको पा लेता है। जब मनुष्यके हृदयकी सारी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं तब वह उस अमृत परमात्माका आनन्द प्राप्त करनेका अधिकारी होता है। जब मनुष्यके हृदयमें वर्तमान अज्ञानकी गाँठ खुल जाती है, तभी वह ब्रह्मके दर्शन कर सकता है।

प्रश्न उपनिषद——

यह उपनिषद् अथर्ववेदका है। इस उपनिषद्में पिप्पलाद ऋषिन सुकेशा आदि छः ऋषियोंके प्रश्नोंका उत्तर दिया है। इसीलिय इसका नाम प्रश्न उपनिषद् है। सुकेशा आदि ऋषि हाथमें समिधा लेकर महर्षि पिप्पलादकी सेवामें गये। वहाँ जाकर वे विनयपूर्वक पिप्पलादसे ब्रह्मविद्या सिखानेकी प्रार्थना करने लगे। पिप्पलादने उनसे एक वर्षतक श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिये कहा। ऋषिकी आज्ञाके अनुसार सबने एक वर्षतक ब्रह्मचर्यका पालन किया। तब कबन्धी ऋषिने पिप्पलादसे पूछा—'यह प्रजा किससे पैदा हुई?' पिप्पलादने उत्तर दिया—'सृष्टि पैदा करनेकी इच्छासे परमेश्वरने तप किया और रयि तथा प्राणको सबसे पहले रचा। सूर्यका नाम है प्राण तथा चन्द्रमाका नाम है रयि। सूर्य ही जीवनी शक्ति देता है और चन्द्रमा ही स्थूल शरीरका पोषण करनेवाला है। इन्हीं दोनोंके संयोग से सारे संसारकी रचना होती है। वर्षका नाम है प्रजापति (परमेश्वर)। दक्षिणायन और उत्तरायण—वर्षके ये दो भाग होते हैं। इनमें दक्षिणायनका नाम है रयि और उत्तरायणका नाम है प्राण। कर्मकाण्डका उपासना करनेवाले दक्षिणायन मार्गसे जाते हैं और चन्द्रलोकमें पहुँचते हैं। यह लोक स्थायी लोक नहीं है। कर्मोंका फल भोगनेके बाद फिर जीवको मनुष्य-लोक में आना पड़ता है। उत्तरायण मार्गसे ज्ञानी लोग जाते हैं और वे वहाँसे होकर आदित्यलोकमें पहुँचते हैं। वहाँसे वे वापस नहीं लौटते हैं।

आश्वलायनके पूछनेपर पिप्पलादने आत्मासे प्राणोंकी उत्पत्ति बतलायी। जैसे मनुष्यके अधीन छाया है, ठीक वैसे प्राण आत्माके ही अधीन हैं। मरते समय मनुष्यकी जैसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वासना होती है, प्राण उसीके अनुसार शरीरमें प्रवेश करते हैं। जैसे चक्रवर्ती राजाकी आज्ञा में बहुत-से सेवक रहते हैं वैसे ही प्राणकी आज्ञामें अपान आदि सहायक चार प्राण रहते हैं। प्राण कुल पाँच हैं—हृदयमें प्राण रहता है, गुदामें अपान रहता है, नाभिमें समान रहता है, नाड़ियों में व्यान रहता है और सुषुम्णा नामकी नाड़ीमें उदान रहता है। इस तरह शरीरमें ये पाँच प्राण रहते हैं। प्राणके रहस्यको जानने वाला मनुष्य कभी प्राणोंको नष्ट नहीं करता है। वीर्यमें प्राणोंका निवास है, अतः प्राणोंकी रक्षाके लिये बीर्यकी रक्षा करना बड़ा जरूरी है। ब्रह्मचर्य पालन करना प्राणोंकी रक्षाका सबसे उत्तम उपाय है। ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ जो मनुष्य प्राणोंको पैदा करनेवाले परमात्माका ज्ञान कर लेता है वह आनन्द प्राप्त कर लेता है।

गार्ग्य मुनिने पिप्पलादसे पूछा—'निद्राके समय मनुष्यके शरीरमें रहनेवाली कौन-कौन इन्द्रियाँ सोती हैं? कौन-कौन जागती रहती है? स्वप्नके समय कौन-कौन इन्द्रियाँ स्वप्नकी घटनाओंको देखती हैं? नींदके समय सुखका अनुभव किसको होता है? ये इन्द्रियाँ किसके आश्रित हैं?' इसपर पिप्पलादने समझाया—'जैसे अस्त होते समय सूर्यकी सारी किरणें उसीमें समा जाती हैं उसी तरह निद्राके समय सारी इन्द्रियाँ मनमें समा जाती हैं। नींदके समय मनुष्य न सुनता है न देखता है, न सूँघता है, न स्वाद लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न चलता है। इस तरह इन्द्रियाँ उस सम्य अपना-अपना काम बंद कर देती हैं। केवल मन ही जागता रहता है। प्राण भी मनके साथ-ही-साथ जागते रहते हैं। स्वप्नका अनुभव जीवात्मा ही करता है। इन्द्रियाँ परमात्माके ही आश्रित हैं।

अन्तिम प्रश्न सत्यकामका था। ओंकार की उपासनासे कौन लोक प्राप्त होते हैं? यही उसका प्रश्न था। उसपर पिप्पलादने ब्रह्मलोककी प्राप्ति ओंकारकी उपासनाका फल बतलाया। इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके कारण इस उपनिषद्का नाम प्रश्न है।

मुण्डक उपनिषद्—

यह उपनिषद् अथर्ववेदका है। इसमें ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया गया है। इसमें महर्षि शौनक अङ्गिरा ऋषिसे ब्रह्मके विषयमें प्रश्न करते हैं। अङ्गिरा उनसे ब्रह्मका रहस्य समझाते हैं।

शौनकने पूछा—वह तत्त्व कौन-सा है जिसे जान लेनेपर सब चीजें जान ली जाती हैं। अङ्गिराने परा तथा अपरा नामकी विद्याओंको ही जानने लायक बतलाया। वेद और वेदाङ्ग अपरा विद्या हैं। जिससे ब्रह्मका ज्ञान होता है वह परा विद्या है। परमात्मा इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर हैं। वह सर्वव्यापक है। वह कभी नष्ट नहीं होता है। ज्ञानी मनुष्य उसे सब

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जगह देखते हैं। वह परमात्मा ही जगत्का निमित्त और उपादान कारण है। मकड़ी जैसे जालको अपने पेटसे निकाल लेता है और फिर उसीमें समेट लेती है, वैसे ही परमात्मा जगतको उत्पन्न कर देता है फिर उसे अपनेसे ही समेट लेता है। पृथिवीमें जैसे बीज डाले जाते हैं वैसे ही वृक्ष, तृण, अन्न आदि पैदा हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जीव शरीर धारण कर लेते हैं। जिस प्रकार जीवित शरीरपर बाल, नाखून आदि अपने-आप ही बढ़ जाते हैं, वैसे ही परमात्माको जगत्को पैदा करनेके लिये किसी प्रकारका प्रयत्न नहीं करना पड़ता है।

ब्रह्मसे अन्न पैदा होता है। अन्नसे प्राण, मन स्थूल संसार और कर्म पैदा होते हैं। कर्मोंसे उनके फल सुख और दुःख पैदा होते हैं। यही सृष्टिकी उत्पत्तिका रहस्य है। कर्मकाण्डका सेवन करनेवाले मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते है, परन्तु स्वर्गसे फिर उनको पुण्य समाप्त होनेपर मनुष्यलोकमें आना पड़ता है। इस तरह वेद-वेदाङ्गरूप अपरा विद्याके उपासक स्वर्गसे ऊँचे लोकके अधिकारी नहीं है।

ज्ञानी मनुष्य कभी भी स्वर्ग आदिकी इच्छा नहीं करते हैं। वे तो सदा निष्काम भावसे काम करते है, उसीके फलस्वरूप वह अमृत बन जाते हैं। यह सारा चर और अचर जगत् उसी ब्रह्मका रूप है। वही सारे जगत्का संचालन करता है। वही सारे संसारको बनाता है। उसीकी आज्ञासे समुद्र, नदियाँ तथा वनस्पतियाँ पैदा होते हैं। उसीको जान लेनेपर मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है।

परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और ज्ञानके सेवनसे अपने अन्तःकरणमें वर्तमान पापोंका दूर करना पड़ता है। शुद्ध अन्तःकरणमें ही परमात्माका प्रकाश होता है। केवल शास्त्रोंके ज्ञानसे इस परमात्माको नहीं जाना जा सकता। यही इस उपनिषद्में विस्तारके साथ बतलाया गया है।

माण्डूक्य उपनिषद---

यह उपनिषद् अथर्ववेदका है। यह सबसे छोटा उपनिषद् है। इसको गौडपाद नामके आचार्यने श्लोकोंमें विस्तारके साथ समझाया है। इसमें परमात्माके चार पाद माने गये है। 'ॐ' को ही परमात्मा माना है। ज्ञानी मनुष्य निष्काम भावसे कर्म करते हुए परमात्माके साक्षात्कार द्वारा आनन्दमय बनकर परमात्मामें ही लीन हो जाते है। जैसे नदियाँ अपना नाम और रूप छोड़कर समुद्रमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार ज्ञानी भी नाम और रूप छोड़कर परमात्मामें लीन हो जाते हैं। जिसने ब्रह्मका ज्ञान कर लिया वह ब्रह्म ही बन जाता है—ज्ञानी मनुष्यका कभी कोई शोक या दुःख नहीं सताता है। उसके मन के सब मैल ज्ञान-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रूपी जल से धुल जाते हैं। इस विद्याके अधिकारी वे ही मनुष्य हैं जो अपने जीवनको निष्काम भावनासे पवित्र बना चुके हैं।

ऐतरेय उपनिषद्---

यह उपनिषद् ऋग्वेदका है। ऐतरेय आरण्यकमें दूसरे आरण्यकके चौथे, पाँचवें और छठे अध्यायोंका नाम ही ऐतरेय उपनिषद् है। इनमें ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन ही हुआ है। इससे केवल तीन अध्याय ही हैं।

इस दिखायी पड़नेवाले जगत्की रचनाके पहले केवल परमात्मा ही था। उसकी इस जगत्को बनानेकी इच्छा हुई। तब उसने अम्भ, मरीचि, मर और जल नामक लोकोंको बनाया। इन लोकोंको बनानेके बाद उसने इनकी रक्षाके लिये लोकपालोंको बनाना चाहा। तब उसने सबसे पहले ब्रह्मको बनाया। उसीका नाम हिरण्यगर्भ भी है। हिरण्यगर्भसे अग्नि आदि देवता पैदा हुए। उनको रहनेके लिये स्थानकी जरूरत पड़ी। परमात्माने उनकी एक गायका शरीर बनाकर दिखाया। उन्हें वह रहनेके लिये ठीक नहीं जँचा। तब परमात्माने घोड़ेको बनाया, परन्तु वह भी उन्हें ठीक नहीं लगा। अन्तमें मनुष्यको बनाया और देवताओंको दिखाया। सब देवताओंको वह खूब पसंद आया। अग्नि उसकी जिह्वामें रहने लगा। वरुण उसकी रसनामें रहने लगा। वायु नाकमें, सूर्य नेत्रोमें, दिशाओंके स्वामी कानोंमें, वनस्पतियोंके स्वामी देवता रोमोंमें, चन्द्रमा मनमें, मृत्यु नाभिमें और जलके देवता वीर्यमें रहने लगे। इस तरह मनुष्यके शरीरमें सभी देवताओंका निवास है। परमात्माने भूख और प्यासको भी मनुष्यके शरीरमें ही स्थान दे दिया।

उसकी भूख और प्यासको दूर करनेके लिये परमात्माने अन्नकी रचना की। सबकी रचनाके अन्तमें परमात्माने स्वयं उसमें प्रवेश किया और उसके ब्रह्मरन्ध्रमें बैठ गया। उस मनुष्यने इन सबकी रचनाका कारण ढूँढ़ना शुरू किया। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे परमात्माका साक्षात्कार हो गया और उसने आनन्द प्राप्त कर लिया। परमात्माके दर्शन कर लेनेवाला मनुष्य सदाके लिये जन्म और मृत्युके बन्धन से छूटकर ब्रह्मलोकमें विचरण करता है।

तैत्तिरीय उपनिषद्---

यह उपनिषद् कृष्णाजुर्वेदका है। तैत्तिरीय आरण्यकके सातवें, आठवें और नवें अध्यायोंको ही तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है। इसके अध्यायोंके नाम वल्ली हैं। ये वल्लियाँ तीन हैं---शीक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली।

शीक्षावल्लीमें वेदके मन्त्रोंके सही उच्चारणके लिये शिक्षा दी गयी है। उसी शिक्षाका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नाम शीक्षावल्ली है। वेदोंके उच्चारणके लिये वर्ण, स्वर, मात्राएँ, प्रयत्न, वर्णोंका समान भावसे उच्चारण करना और सन्धि—इनका ज्ञान होना जरूरी है। सन्धि काम संहिता भी हैं। वर्णोंके मेलको सन्धि कहा जाता है। तैत्तिरीय उपनिषद्में इसी सन्धि या संहिताको भी ज्ञानका साधन माना है। सन्धि जैसे पाँच हैं, वैसे ही लोक, ज्योति, विद्या, प्रजा और आत्मा —ये पाँच संहिता है। इनको महासंहिता कहा जाता है।

लोकमें पृथिवी पूर्व वर्ण है, स्वर्ग आगेवाला वर्ण है, आकाश सन्धि है, वायु इनका मिलानेवाला है। ज्योतिमें अग्नि पूर्व वर्ण, सूर्य आगेवाला वर्ण और जल सन्धि है, बिजली इनको मिलानेवाली है। विद्यामें आचार्य पूर्व वर्ण हैं। शिष्य आगेवाला वर्ण है, विद्या सन्धि है, प्रवचन मिलानेवाला है। संतानमें माता पूर्व वर्ण है, पिता आगेवाला वर्ण होता है, संतान सन्धि है, संतान पैदा करना सन्धिका कारण है। आत्माके विषयमें नीचेका जबड़ा पूर्व वर्ण हैं, ऊपरका जबड़ा आगेवाला वर्ण है, वाणी सन्धि है, जीभ मिलानेवाली है।

इन पाँचों संहिताओं के ज्ञानका फल भी इस उपनिषद् में बतलाया है। लोकसन्धिके ज्ञानसे उत्तम लोक मिलता हैं। ज्योति-ज्ञानसे भौतिक सुख, प्रजा-संधिके ज्ञानसे उत्तम संतान, विद्या-संधिके ज्ञानसे विद्या और ब्रह्मतेजका मिलना और आत्म-संधिके ज्ञानसे बोलने की शक्ति मिलती है।

इसी शीक्षावल्लीमें गुरु स्नातकको सदाचारकी शिक्षा भी देता है। सत्य बोलना चाहिये। धर्मका आचरण करना चाहिये। स्वाध्यायको कभी नहीं छोड़ना चाहिये। गृहस्थ-धर्मका पालन करना चाहिये। सत्य, धर्म, अच्छे कामोंसे और उन्नतिके कामोंसे प्रमाद नहीं छोड़ना चाहिये। माता, पिता गुरु और अतिथिको देवता समझना चाहिये। अच्छे कामको करना चाहिये और बुरे काम छोड़ देने चाहिये। गुरुजनोंमें जो अच्छाइयाँ हों उन्हींका ग्रहण करना चाहिये। पूज्य पुरुष जब तुम्हारे घर आयें तब उनका आदर करना चाहिये। दानकी वृत्तिको अपनाना चाहिये। कर्म अथवा चरित्रके विषयमें शंका होनेपर ब्रह्म-ज्ञान रखनेवाले मनुष्योंका अनुकरण करना चाहिये। यही उपनिषदोंकी शिक्षा है।

दूसरी ब्रह्मानन्द-वल्लीमें ब्रह्मका वर्णन है। ब्रह्म सत्य, ज्ञानरूप और अनन्त है। वह ज्ञान बड़ा दुर्लभ है। इस ज्ञानको पा लेनेपर मनुष्य ब्रह्मरूप होकर आनन्द ही आनन्दका अनुभव करता है। ब्रह्म सब प्रकारके आनन्दोंका एकमात्र स्थान है। उसे जान लेनेपर मनुष्य निर्भय हो जाता है। उसे कभी कोई दुःख या अभाव नहीं सताता है। वह कभी कोई पाप वासना अपने मनमें रखता ही नहीं है।

इस उपनिषद्का तीसरा अध्याय भृगुवल्ली कहलाता है। भृगु नामका एक ऋषि था। वह वरुणका पुत्र था। उसे ब्रह्मज्ञानकी इच्छा हुई। उसने अपने पिता वरुणके पास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। पिताने उसे समझा दिया कि 'अन्न. प्राण, नेत्र, कान, मन और वाणी--ये सब ब्रह्म प्राप्त करनेके दरवाजे हैं। इन सबमें ब्रह्म रहता है। दीखनेवाला सारा चर और अचर जगत् उसी ब्रह्मसे पैदा हुआ है। उसीमें लीन होता है। बस वही ब्रह्म है।'

भृगुने समझ लिया कि अन्न ही ब्रह्म है। तब वह पुनः पिताके पास गया और बोला 'महाराज, मुझे ब्रह्मका ज्ञान कराइये।' पिताने उसे ब्रह्मज्ञानका साधन तपको ही बतलाया। उसने भी तप करके समझा प्राण ही ब्रह्म हैं। पुनः उसने पितासे ब्रह्म जाननेकी इच्छा प्रकट की। पिताकी आज्ञासे फिर तप करके उसे ज्ञान हुआ कि मन ही ब्रह्म है। फिर पिताकी आज्ञासे तप करनेपर उसने विज्ञानको ब्रह्म समझा। अन्तमें उसे तप करनेपर मालूम हुआ कि आनन्दका नाम ब्रह्म है। यही ब्रह्मका सच्चा स्वरूप था। ब्रह्मके इसी रूपको समझाना इस वल्लीका लक्ष्य है।

छान्दोग्य उपनिषद्---.

यह उपनिषद् सामवेदका है। छान्दोग्य उपनिषद् सब उपनिषदोंसे बड़ा है। यह है भी बड़ा महत्त्वपूर्ण। इसमें कुल आठ अध्याय हैं। इसके अन्दर अनेक सुन्दर-सुन्दर कथाएँ हैं। वे हमारे ज्ञानको बढ़ानेवाली हैं। इसके प्रारम्भमें ओंकारकी उपासनाका महत्त्व बतलाया गया है। देवता और राक्षसोंकी जब लड़ाई हो रही थी, उस सम्य देवताओंका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। सूर्य ही जगत्का प्राण है, इसलिये ओंकारका प्रतीक सूर्य ही है। इसकी उपासनासे मनुष्य अमृत बन जाता है।

ओंकारके विषयमें एक सुन्दर वार्तालाप है। शिलक और दाल्भ्य दो ऋषि थे। शिलकने एक दिन दाल्भ्यसे पूछा--'सामका आश्रय कौन है?' दाल्भ्यका उत्तर था--'स्वर'। फिर शिलकने पूछा--'स्वरका आश्रय कौन?' उत्तर मिला 'प्राण'। फिर प्रश्न हुआ--'प्राणका आश्रय?' उत्तर--'अन्न'। शिलकने फिर पूछा--'उसका आश्रय?' उत्तर मिला 'जल'। 'उसका आश्रय?' पुनः प्रश्न हुआ। दाल्भ्यने कहा--'स्वर्गलोक'। फिर प्रश्न करनेपर दाल्भ्यने कहा--'उसके आगे प्रश्न नहीं करना चाहिये। स्वर्गमें ही साम गान होता है।' इसपर शिलक बोले--स्वर्गका भी कोई आश्रय अवश्य है।' दाल्भ्यने कहा--'कौन?' शिलक बोले--'मनुष्यलोक'। दाल्भ्यने पूछा--'उसका आधार?' उत्तर मिला--'जो सबका आधार है वही। इसके आगे प्रश्न नहीं करना चाहिये।' तब प्रवहणने सच्चा उत्तर दिया--'सबका आधार है ओंकार। बस, यही सबसे श्रेष्ठ तत्त्व है।'

इसके बाद साधु पुरुषको ही साम बतलाया गया है। ब्रह्मको अमृत सिद्ध किया गया है। उस अमृतके अधिकारी केवल ज्ञानी ही होते हैं। उस अमृतका रूप बहुत विशाल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। सारा ब्रह्माण्ड ही उसका रूप है। यह पुरुष एक तरहका यज्ञ है। उसका खाना, पीना, सोना, उठना--ये ही स्तुति हैं।

इसके चौथे अध्यायमें ब्रह्मकी उपासनाके विषयमें बड़ी रोचक कहानी दी है। राजा जानश्रुति बड़ा दानी था। उसने जगह-जगह अन्न बाँटनेके लिये धर्मशालाएँ बना रक्खी थीं। एक दिन कुछ हंस रातको उड़कर उधरसे निकले। उनमेंसे एक हंसने राजाके तेजकी प्रशंसा की और उसे रैक्वके बराबर बतलाया। राजाने अपने एक नौकरको रैक्वको खोजनेके लिये भेजा। नौकर उसकी खोज करके राजाके पास आ गया। तब राजा खूब भेंट लेकर रैक्वके पास उस विद्याको सीखने पहुंचा जिसे रैक्व जानता था। राजाने जाते ही भेंट उसे दी और विद्या सिखानेकी उससे प्रार्थना की। रैक्वने वह भेंट अपर्याप्त बतलायी। तब राजा एक हजार गाय, रथ और अपनी कन्याको भेंटमें देनेके लिये लाया। रैक्वने उसे उस देवताका स्वरूप बतलाया।

इसी अध्यायमें जबालाके पुत्र सत्यकामकी बड़ी सुन्दर कहांनी है। जबाला नामकी एक स्त्री थी। उसके सत्यकाम नाम का बालक था। उसे गुरुसे उपदेश लेनेकी इच्छा हुई। उसने अपनी माता से अपना गोत्र पूछा। उस समय गुरुलोग बिना गोत्र बतलाये शिष्यको उपदेश नहीं दिया करते थे। माता गोत्रका नाम जानती नहीं थी। इसलिये उसने साफ-साफ कह दिया। फिर भी सत्यकाम गौतम ऋषिके पास शिक्षा लेनेके लिये पहुँचा। ऋषिने उससे गोत्र पूछा। उसने सत्य-सत्य बात कह दी। इसपर गौतम बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसका यज्ञोपवीत-संस्कार कर दिया। उसे चार सौ गायें देकर उन्हें चरानेके लिये बनमें भेज दिया। उसने भी चार सौ गायोंके हजार होने पर ही लौटनेकी प्रतिज्ञा की।

एक दिन एक साँड़ने सत्यकामसे कहा--'अब हम हजार हो गये हैं। तू हमें गुरुकुल पहुँचा।' साथ ही साँड़ने उसे ब्रह्मका पहला चरण समझाया। साँड़ने चारों दिशाओंको ब्रह्मका एक चरण बतलाया। ब्रह्मका दूसरा चरण उसे अग्निसे मालूम हुआ। पृथिवी, आकाश, समुद्र और अन्तरिक्षको उसने ब्रह्मका दूसरा चरण बतलाया। ब्रह्मका तीसरा चरण उसे हंससे मालूम हुआ। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और बिजली--उसका तीसरा चरण है। मग्दुने 'प्राण, नेत्र, कान और मन ब्रह्मका चौथा पाद है'--यह बतलाया। तब वह गुरुकुलमें गायोंको लेकर पहुँचा। गौतमने उससे कहा--'पुत्र ! तू ब्रह्मज्ञानी-सा दिखलायी पड़ता हैं। तुझे ब्रह्मकी शिक्षा किससे मिली ?' शिष्यने यद्यपि ब्रह्मकी शिक्षा पा ली थी फिर भी वह गुरुके मुखसे नहीं मिली थी, इसलिये उसने गुरुसे प्रार्थना की—'महाराज ! मुझे शिक्षा दें।' तब गुरुने प्रसन्न हो ब्रह्मका सारा रहस्य उसे समझाया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसी प्रकार उपकोसलने सत्यकामसे ब्रह्मकी शिक्षा ली। इस प्रकार अनेक कथाएँ इसमें हैं। उन सभीमें ब्रह्मज्ञानके उपदेशकी कहानियाँ हैं। उनमें मुख्य ये हैं--श्वेतकेतु और प्रवाहणकी कथा, उद्दालककी कथा, विरोचन और इन्द्रका ब्रह्माके पास जाना आदि। इसमें बड़े विस्तार के साथ ब्रह्मको समझाया है। वह ज्ञानका खजाना है।

वृहदारण्यक उपनिषद्---

यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेदका है। यह आकारमें सबसे बड़ा है और इसको वनमें बैठकर कहा गया था, इसलिये यह वृहदारण्यक कहलाता है। इसमें भी ब्रह्मका ही विवेचन खासतौरसे किया गया है। इसमें सबसे पहले सृष्टिकी उत्पत्ति, प्राणका महत्त्व, ब्रह्मकी सर्व-व्यापकता और चारों वर्णोंकी रचना बतलायी है। सबसे पहले प्रजापति अकेला ही था। उसे डर लगा। तब उसने विचार किया--'डर तो दूसरेसे लगा करता है। यहाँ तो दूसरा कोई नहीं है।' उसने अपने शरीरके दो विभाग किये। आधेसे स्त्री और आधेसे पुरुषकी रचना हुई। इसी प्रकार उसीसे सारी सृष्टि बन गयी। वही सबमें काठमें अग्निकी तरह व्याप्त है।

गार्ग्य और अजातशत्रुकी ब्रह्मके विषयमें बातचीत बड़ी महत्त्वपूर्ण है। गार्ग्य अजातशत्रुको ब्रह्मका तत्त्व समझानेका प्रयत्न करता है; परंतु वह स्वयं अज्ञानमें है। इसलिये वह सूर्य, चन्द्र, दर्पणके प्रतिबिम्ब और छायाको ब्रह्मका रूप बतलाया है। जो स्वयं ही भ्रममें पड़ा है वह कैसे दूसरोंको सच्चे रास्तेपर ले जा सकता है। तब अजातशत्रुने उसे ब्रह्मका सच्चा रूप समझाया है। विज्ञानमय पुरुषको ही उसने ब्रह्म सिद्ध किया है।

ब्रह्मविद्याके विषयमें याज्ञवल्क्य और मैत्रेयीकी भी रोचक बातचीत इसमें है। मैत्रेयीने अपने पतिदेव याज्ञवल्क्यसे ब्रह्मविद्याकी शिक्षा देनेकी प्रार्थना की। उससे याज्ञवल्क्य ने कहा--'मैं तुझे अमृतका उपदेश देता हूँ। तू सुन। पतिके प्रयोजनके लिये पति प्यारा नहीं होता है। किंतु आत्माके अपने ही प्रयोजनके लिये वह प्यारा है। स्त्रीके प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिय नहीं होती है किंतु अपने ही प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिय है। इसी प्रकार प्रत्येक चीज अपने ही प्रयोजनके लिये प्यारी लगती है।' इससे यह निश्चित है कि आत्माके ही दर्शन, श्रवण और मननसे सब बातोंका ज्ञान होता है। आत्माको समझानेके लिये उन्होंने नमकका उदाहरण दिया। जैसे जलमें पड़ा हुआ नमक उसमें घुल जाता है, उसे कोई निकाल नहीं सकता, उसी तरह यह आत्मा सबमें मिला हुआ है। यह सर्वव्यापक है। यह आत्मा अमृत है। यही ब्रह्म है।

याज्ञवल्क्य और अश्वलकी भी बातचीत सुन्दर है। याज्ञवल्क्य ऋषिने ब्रह्मका सक्षात्कार कर लिया था। राजा जनक भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इन दोनोंका वार्ता-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लाप ब्रह्म के विषय में देखनेलायक है। इस उपनिषद्में ज्ञानकी सामग्री सभी उपनिषदोंसे अधिक है। इस उपनिषद्से एक बात जो सिद्ध होती है वह है प्राचीन भारतमें स्त्री-शिक्षाकी। पुराने जमानेमे स्त्रियाँ भी किस तरह ब्रह्मज्ञानमें रुचि लिया करती थीं। ऊँची-से-ऊँची शिक्षा उन्हें मिलती थी। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात जो इस उपनिषद् से मालूम होती है वह यह है कि वल ब्राह्मण ही इस विद्याको नहीं जानते थे; किंतु क्षत्रिय भी ब्रह्मविद्यामें पारंगत थे।

कौषीतकि-ब्राह्मण उपनिषद्---

यह ऋग्वेदका है। इसमें भी अन्य उपनिषदोंकी भाँति आत्माका ही प्रतिपादन किया गया है। गर्गके प्रपौत्र चित्रने यज्ञकिया था। उद्दालकको उसने अपने यज्ञमें ऋत्विज नियुक्त किया था। उद्दालक कर्म काण्डके वहुत वड़े जानकार थे। उद्दालक स्वयं नहीं आये। उन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतुको उस कामके लिये भेज दिया। श्वेतकेतु जाकर आसनपर बैठ गये। चित्रने उनसे पूछा--'हे उद्दालककुमार ! आप मुझे किसी सुरक्षित स्थानपर ले जाकर रक्खेंगे या एसे स्थानपर ले जायँगे जो बिलकुल ही सुरक्षित नहीं है ?' श्वेतकेतु इस प्रश्नका उत्तर नहीं जानता था, इसलिये बोला--'मुझे इस बातका तो पता नहीं। मैं अपने पिता से यह बात पूछूँगा।' वह तुरंत अपने पिताके पास आ गया और चित्रके प्रश्नको उनसे निवेदन करने लगा। उद्दालक भी इस विषयमें कुछ नहीं जानते थे। इसलिये वे अपने पुत्रके साथ इस बात को जानने के लिय चित्रके यहाँ ही पहुँचे। वे विनयपूर्वक चित्रसे बोले--'मुझे ब्रह्मविद्याकी शिक्षा देनेकी कृपा करें।' तब चित्रने उन्हें ब्रह्मविद्याकी शिक्षा दी। उसी शिक्षाका इस उपनिषद्में वर्णन हैं। कर्मकाण्डको करनेवाला स्वर्गलोकमें जाता है। वह कर्मोंका पुण्यफल भोगनेपर फिर मनुष्यलोकमें आता है। अपने कर्मोंके अनुसार किसी भी योनिमें जन्म ले लेता है। निष्काम-भावसे कर्म करनेवाला ज्ञानी पुरुष कभी भी स्वर्गलोककी इच्छा नहीं करता है। वह हर एक कर्मको विना फलकी इच्छाके कर्तव्य समझकर करता है। उसको वे कर्तव्य-भावसे किये गये कर्म स्वर्गलोकसे भी ऊँचे ऐसे लोकमें पहुँचा देते हैं जहाँसे वह वापस नहीं लौटता है। वह सर्वदा वहाँ पर आनन्दमय रहता है। वह ब्रह्मरूप ही बन जाता है।

इस उपनिषद्में प्राणको ही ब्रह्म बतलाया गया है। प्राण की उपासना वही कर सकता है जो कभी किसीसे कुछ भी नहीं माँगता हैं। प्राणोंको रोकनेका अभ्यास कर लेनेपर मनुष्य अमर बन जाता हैं और आनन्दरूप हो जाता हे।

इसमें सूर्यकी उपासनापर वहुत जोर दिया गया हैं। दिनमें तीन बार--सुबह, दोपहर और सायंकाल--सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य अच्छी संतान पाता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। सदा सुख भोगता हुआ वह अन्तमें आदित्य लोकमें चला जाता है। भगवान् सूर्यदेव ब्रह्मकी ही मूर्ति हैं। इस प्रकार यह उपनिषद् उपासनापर भी विशेष बल देता है।

श्वेताश्वर उपनिषद्---

इस उपनिषद्का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेदसे है। इसमें कुल ६ अध्याय हैं। इसमें भी ब्रह्मका ही प्रतिपादन है। इसमें प्रकृति-पुरुषका विवेचन विस्तारके साथ किया गया है।

इसमें सर्वप्रथम ही प्रश्न किया गया है कि सारे जगत्का कारण जो ब्रह्म है? वह कौन है? हम किससे पैदा हुए हैं? हम किसके प्रभावसे जी रहे हैं? हमारा आधार कौन है? हमारा स्वामी कौन है? वेदोंमें इस जगत्के कई कारण बतलाये गये हैं। कहीं समयको कारण बतलाया है तो कहीं स्वभावको उसका हेतु सिद्ध किया है। क्या वे ही जगत्के वास्तविक कारण हैं? इस जगत्की कारण है प्रकृति। वह प्रकृति रथकी नेमिके समान है। जैसे नेमिके ऊपर लोहेका घेरा होता है, वैसे ही इस प्रकृतिको सत्त्व, रज और तम-- ये तीन गुण घेरे रहते हैं। यह संसार एक प्रकारकी नदी है। यह नदी बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी चलती है। इसमें सब जगह कपट-ही-कपट है। यह जगत् ब्रह्ममें स्थित है। वही जगत्का संचालन करता है। उसको जानकर ही मनुष्य अमृतको प्राप्त कर सकता है। प्रकृति और जीव उस परमात्माकी प्रकृतियाँ हैं और वह उन दोनोका स्वामी है। यह जाननेवाला मनुष्य सदा आनन्दमय रहता है। यही जाननेयोग्य तत्त्व है। जैसे तिलोंमें तैल, दहीमें घी और अरणिमें अग्नि रहती है, वैसे ही हृदयमें परमात्मा छिपा रहता है। उस परमात्माको देखने का उपाय है--योगसाधन।

वह परमात्मा सर्वव्यापक है। वह सब प्राणियोंके हृदयमें रहता है। सारा विश्व ही उसका रूप है। परमात्मा हर एक शरीरमें निवास करता है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और बड़ेसे भी बड़ा है। वह कभी भी नष्ट नहीं होता है। वह कभी बूढ़ा भी नहीं होता है।

यह शरीर पीपलका पेड़ है। इसपर जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक साथ रहनेवाले दो पक्षीएक ही हृदयरूपी घोंसलेमें रहते हैं। शरीरमें रहते हुए प्रारब्धके अनुसार जो सुख और दुःख कर्मोंके फल हैं, वे ही इस पीपलके फल हैं। इन फलोंको एक पक्षी-- जीवात्मा तो बड़े स्वादके साथ खाता रहता है, परंतु दूसरा पक्षी--परमात्मा--दूरसे देखता ही रहता है, खाता नहीं है। एक ही वृक्षपर रहता हुआ जीवरूपी पक्षी तो सदा मोहमें फँसा रहता है और अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहता है। जब कभी इसपर इसका साथी दूसरा पक्षी--परमात्मा दया करता है तब यह अपने साथी---परमात्माको पहिचानती है। उसे पहिचान लेनेपर वह भी दुःख आदिसे छूट जाता है। वह परमात्मा ही समयपर संसारको

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पैदा करता है और वही समय आनेपर उसे अपने अंदर लीन कर लेता है। उसकी मायासे ही सारा संसार अज्ञानके समुद्रमें पड़ा रहता है। उसका लोक ऐसा है जहाँतक सूर्य और चन्द्रमा आदि कोई भी नहीं पहुँच सकते। उसीके प्रकाशसे सूर्य आदि भी प्रकाशित होते हैं। उसीके ज्ञानसे मनुष्य मृत्युको जीत सकता है।

महानारायणोपनिषद्---

यह उपनिषद् अथर्ववेदका है। इसमें मुख्यतया भगवान् विष्णुकी भक्तिका वर्णन है। इसमें दो काण्ड हैं--पूर्व और उत्तर। देवताओंके हजार वर्षतक परम तत्वका रहस्य जाननेके लिये ब्रह्माने तपस्या की। हजार वर्ष बीतनेपर भगवान् विष्णु प्रकट हुए। उनके दर्शन कर ब्रह्माजी बोले-- 'भगवन्! मुझे परम तत्त्वका रहस्य बतलाइये। आप ही सारे रहस्योंको जानते हैं। आप सर्वज्ञ हैं। आप ही सारे संसारका पालन करनेवाले है। आप ही सब जगह व्यापक है। आप सारी अविद्याका नाश कर सकते है। आप ही अत्यन्त आनन्दरूप है। उपनिषद् भी आपकी ही खोज करते हैं। इसपर विष्णुने महानारायण-उपनिषद्को ही परम तत्त्वका रहस्य जाननेका साधन बतलाया। वही ब्रह्मज्ञान करवा सकता है। ब्रह्मके चार पाद हैं--अविद्यापाद, सुविद्यापाद, आनन्दपाद और तुरीयपाद। अविद्या भी भगवान्की ही माया है। ये सब भगवान् विष्णुके ही वाचक है। भगवान् विष्णुकी भक्ति ही मनुष्यको परम सुख दे सकती है। भक्त कभी दुनियाके प्रपञ्चोंमें आसक्त नहीं होता है। वह सब कार्य भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये ही करता हैं। वह सदा आनन्दके लोकमें ही विचरण करता है। वह सायूज्य मुक्तिकों प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार भक्तिकी ही इस उपनिषद्में प्रधानता है। ज्ञानकी ओर उतना अधिक जोर यह उपनिषद् नहीं देता, जितना कि अन्य उपनिषद् देते हैं।

अन्य उपनिषद्---

और भी राम-भक्ति, कृष्ण-भक्ति, शिव-भक्ति तथा अन्य देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक उपनिषद् है, परंतु उनमें ज्ञानका विवेचन अधिक नहीं है, अतः वे साधारण कोटिके है। उनका विशेष परिचय अपेक्षित नहीं है। विभिन्न सम्प्रदायवालोंने अपने-अपने सम्प्रदायोंके नामसे उपनिषद् बना लिये हैं; ऐसा माना जाता है।

उपनिषदोंकी भाषा बड़ी सरल है। थोड़ा-सा पढ़ा-लिखा मनुष्य भी उनको समझ सकता है; परंतु उनके गूढ़ भावोंको समझना बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। सभी उपनिषदोंमें प्रायः एक ही बस्तुका अलग-अलग शब्दोंमें विवेचन है। इनकी एक विशेषता यह हैं कि ये शास्त्रार्थके झगड़ेमें नहीं पड़ते हैं। भारतीय संस्कृतिका सही रूप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाननेके लिये उपनिषदोंका ज्ञान जरूरी है। इनमें गुरुका बड़ा महत्त्व है। बिना गुरुकी दयाके ज्ञानका होना अत्यन्त कठिन काम है। गुरुके सामने विनय धारण करना––यह भी एक भारतीय संस्कृतिकी विशेषता है। उपनिषद् अत्यन्त बलपूर्वक यह कहते हैं। वास्तवमें विनय ही मनुष्यको ज्ञानका अधिकारी बनाता है।

---:०:---

समाप्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection